योगी गुरु जी के प्रश्नोत्तर — भाग 17

सत्संग से 200 प्रश्नोत्तर

आध्यात्मिक प्रत्यक्ष ज्ञान मार्ग

adhyatmikpratyakshgyan.com

प्रश्न: (लाइव) गुरुजी, अगर परमात्मा तक जाना है तो परमात्मा खुद क्यों नहीं मिला लेता अपने में? यह खेल क्यों रचा है कि हम कर्म करके तब उस तक जाएं? (P17-0001)

जरूर हम उससे बिछड़ने के लिए कुछ कर्म ऐसा कर बैठे हैं, उससे हम भी बिछड़े हैं — लालच में।

प्रश्न: (लाइव) गुरुदेव, इस जन्म में आत्म-साक्षात्कार हो जाएगा? तबीयत थोड़ी खराब होती जा रही है, ऐसा लगता है मुझे। (P17-0002)

चलिए, तबीयत खराब है — तुम ना खराब होना, बस।

प्रश्न: (लाइव) गुरुदेव, आत्म-चिंतन में निरंतरता कैसे बनाए रखें? (P17-0003)

पक्का कर लो क्या चाहिए, आत्म-चिंतन होने लगेगा। आत्म-चिंतन का मतलब — आत्म मतलब सबसे पीछे आत्म है, जहां हम खड़े हैं; चिंतन का मतलब होता है अपने आप को छुड़ाना है। पहले समझो कहां-कहां मैं उलझा हुआ हूं, कहां-कहां फंसा हूं, कहां-कहां यह वादा करते चला आ रहा हूं। वादा करना बंद करो। हो जाए तो ठीक है — वादा बंद करो।

प्रश्न: (लाइव) प्रणाम गुरुजी, मुझे भी पार उतारो। मैं भी पूरा दिन आपको सुनती हूं। (P17-0004)

आपको पार उतरना है — तैरना सीखो और निकल लो।

प्रश्न: (लाइव) कुछ इच्छा नहीं है गुरुजी। आत्म-चिंतन कैसे करूं, अपने स्वभाव में कैसे रहूं, बताइए। (P17-0005)

बस कुछ चाहिए नहीं, तो बात ही खत्म — चिंतन करने की क्या जरूरत है? चिंतन हो रहा है, इसका मतलब कुछ, कहीं अभी चाहिए। चिंतन क्यों?

प्रश्न: (लाइव) भगवान की सृष्टि जब तीन गुणों से है, तब लोग माया से छुटकारा कैसे पाएं? (P17-0006)

आराम से। सात्विक, रजोगुण, तमोगुण — रजोगुण-तमोगुण से आप बाहर रहोगे, सतोगुण से आप अपने आप में आ जाओगे। बस सतोगुण अपना लो, बात खत्म करो।

प्रश्न: (लाइव) गुरुदेव, कहां जाना है? हमें भी मार्ग बताइए। (P17-0007)

पहले, कहां जा रहे हो, वहां से तो हटो — जाना तो बंद करो। अगर जाना आपने बंद कर दिया, तो जहां जाना है वहां का मार्ग मिल जाएगा। वो आप ही के तो अंदर है, बस आप बाहर जाना तो बंद करो।

प्रश्न: (लाइव) गुरुजी, क्या मन की वासना को पूरा करना भी बेईमानी है? (P17-0008)

मन की वासना है, मन को पूरा करने दो — तुम अच्छा काम करो ना, तुम सत्कर्म करो। छोड़ो मन की वासना को, आप क्यों पूरा कर रहे हो? या तो आप कहो कि आपकी वासना है, बेईमानी है, या तो छोड़ दो — नहीं तो कर्म का परिणाम भोगो।

प्रश्न: योगी जी, मैं जो आपको देख रही हूं, सुन रही हूं, बोल रही हूं — इसे जीवात्मा समझूं — तो इस जीवात्मा को आखिर चाहिए क्या? जो चाहिए-चाहिए था वो देकर भी देखा, पर संतुष्टि नहीं, कहीं "द एंड पॉइंट" आता ही नहीं। मेरा हाल खुजली वाले रोगी जैसा है — खुजाने में मजा भी, फिर जलन भी। मंजिल दूर हो तो उसके पीछे भागती हूं, पास पहुंचते ही वो फीकी हो जाती है, और उसके चक्कर में कितने पाप कमाए, कितनों का दिल तोड़ा। अब थक गई हूं — बताइए मुझे क्या चाहिए, कहां पहुंचना है कि उसके बाद कोई दूसरा ऑप्शन न दिखे और परम शांति मिले?

(P17-0009)

आकर्षण तभी होता है जब आपको चाहिए। जैसे चुंबक लोहे को खींचता है — जब उसमें उसके तत्व होते हैं; और अगर लोहे की मात्रा ज्यादा है, चुंबक की कम, तो लोहा चुंबक को खींच लेगा। रूप, गंध, स्पर्श — हम आकर्षित तभी होते हैं जब हमें चाहिए, और जितनी मात्रा ज्यादा उतना आकर्षण। रास्ते में ₹1 गिरा हो तो जाने दो, दो लाख हों तो उठाओगे; लेकिन वही एक लाख ना चलने वाले नोट हों तो नहीं उठाओगे, क्योंकि उसका मूल्य नहीं है। आकर्षण उसी से होता है जो आपकी जरूरत को पूरी करे। तो आकर्षण "चाहिए" में है। अब अगर देखोगे तो आपको चाहिए शांति। कभी लोगों ने, कपड़ों ने, जरूरत की चीजों ने भी शांति दी — लेकिन तब तक, जब तक मैंने अपने आप को शरीर समझा था। कहीं से समझ में आया कि मैं शरीर नहीं हूं, शरीर का तो एक दिन नाश हो जाएगा, तो मेरा क्या होगा? जब ये प्रश्न उठने लगे तो आप अपने आप को शरीर से अलग देख पा रहे हो। अब जिन वस्तुओं और लोगों से शांति मिलती थी, वही अशांति का कारण बन बैठे। करना कुछ और था, कर बैठे कुछ और। क्योंकि आत्मा को चाहिए परमात्मा, जीव को चाहिए प्रपंच। जैसे कैदी पैदा होते हुए कैदी नहीं होता — उसने खुद अपराध करके अपने आप को कैदी बनाया — वैसे ही आत्मा ने खुद अपने आप को जीवात्मा बनाया। हम इस संसार को जानना चाहे, और इस संसार को कोई कभी जान नहीं सकता, क्योंकि जिसे आप जानने का प्रयास कर रहे हो वो प्रतिपल बदल रहा है। जानने का प्रयास मतलब इच्छा जगी — अपूर्णता के लिए; अब जानने की आदत हो गई। तो जानने की इच्छा ही जीवात्मा हो गई। एक तरफ जानने वाला, और उसके पीछे आत्मा है जो परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल है — तुम दोनों एक ही हो। जानते-जानते लोगों को अपना बना लिया; अब आप जाना चाह रहे हो तो वो लोग खींच रहे हैं — जिनको आपने यूज़ किया है वो मानसिक रूप से खींच रहे हैं, "तुम तो चले जाओगे, मेरा क्या होगा?" जैसे कैदी फिर व्यक्ति बनना चाहता है लेकिन कानून कहता है सजा काट लो फिर जाना — वैसे ही ये कह रहे हैं, तुम मेरी भरपाई कर दो। जब हिसाब-किताब पूरी तरह हो जाएगा और आप छोड़ने के लिए पूरी

तरह तैयार हो, तो एक समय ऐसा आएगा ये आपको छोड़ देंगे। अगर उस जगह रह के भरपाई करते तो अनेक तरह के बंधन और तैयार हो जाते; तो आप अपने आप को उस जगह रख लो जहां ईमानदारी, सत्कर्म आपके द्वारा हो रहा है, और वो अपनी जिंदगी जीने लगें — प्रकृति अपने हिसाब से हिसाब कर लेगी, क्योंकि आपने समर्पण कर दिया। अब जीव को चाहिए प्रपंच — तो इसे प्रपंच मत दो। प्रपंच मतलब बेमतलब की, रस भरी बातें, जिसका जीवन में कोई सार नहीं — वो रूप, वो गंध, वो स्पर्श, वो रस। बस जरूरत में जीना चालू करो।

प्रश्न: आप कहते हैं कि अगर समझ विकसित कर लो तो दुखी होने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। तो ये समझ कैसे विकसित करें? (P17-0010)

भाई, आप पहले ये पक्का करो कि हम इस शरीर में आए हैं तो इस शरीर के द्वारा क्या-क्या हो सकता है। यहां दो ही बातें हैं — या तो इस शरीर के द्वारा धन कमाया जा सकता है, या इस शरीर के द्वारा अपना कल्याण किया जा सकता है। धन की आवश्यकता मुझे इसलिए है कि मैं अपना पेट भर सकूं, और कपड़ा और मकान। अगर आपने उतना जीवन में कमा लिया, फिर कमाने की क्या जरूरत है? फिर लग जाओ अपने आत्मिक कल्याण में। दो ही बात है ना जीवन में, तो दुखी क्यों होना? जब अध्यात्म में लगते हो तो लगता है कुछ हो नहीं रहा — कुछ तो हो ही रहा है: बाहर से प्रपंच तो नहीं भर रहे। अब नहीं भर रहे, उसी की तो व्याकुलता है — तकलीफ इस बात की है कि अब तक बहुत प्रपंच भर सकते थे, भर नहीं पा रहे। लोग भाग क्यों जाते हैं? वो खालीपन बर्दाश्त नहीं हो रहा। धन का उपयोग क्या है? व्यवस्था तक है, शरीर की जरूरत तक है। हमारी एक आयु भी तो है — देख लो इतने सालों में तुम कितना खाते हो, क्या खर्च है। लेकिन कमाने की आदत पड़ गई। 80 साल बाद भी आदमी काम कर रहा है और कह रहा है मैं महान हूं — इसमें क्या महानता है? (मेरे पास 80 साल के ऊपर के एक बुजुर्ग आए, बड़ी खुशी से बोले अभी भी दुकान पे काम करता हूं। जरूरत भी नहीं है; अगर आप काम बंद कर दो तो एक व्यक्ति को रोजगार मिलेगा। 60 के बाद बैठ जाते तो वो जगह किसी और को मिल जाती।) भाई, आप उतना ही धन अर्जित करो जितनी आपको जरूरत है। पेट भरने के लिए ही जीवन गंवाते हैं — इसी के लिए ये शरीर मिला है क्या?

प्रश्न: योगी जी, आप कहते हो दो ही रास्ते हैं — शरीर के लिए जी लो, जिसकी जरूरतें बहुत जल्दी पूरी हो सकती हैं, या आत्म-कल्याण। तो इस दूसरे रास्ते की तरफ हम पूरे वेग के साथ क्यों नहीं बढ़ पाते? (P17-0011)

इसलिए कि इसमें आपको प्रपंच नहीं मिलता। आपको प्रपंच की आदत पड़ गई है — गप मारना, सड़ाका मारना। पूरा खाली समय है, गप मारोगे लेकिन अकेले जाके एकांत में नहीं बैठोगे; बोलोगे घुटन हो रही है, बोर हो रहा है। रस भरी बातें चाहिए, कोई आपका मान बढ़ाए। आप जीवन को बहुत गहराई से समझो — इस शरीर के द्वारा मैं क्या-क्या कर सकता हूं? अगर कोई भी पद पा लूं तो उस पद से पैसा ही आएगा ना; आखिरी परिणाम क्या है? ऐसा भी नहीं कि आप किसी को परमानंद दे पाओगे, क्योंकि खुद के पास नहीं है — उल्टा अपनी मूर्खता में उसे और फंसा लोगे। तो मैं कह रहा हूं, अगर पेट की, रहने की और कपड़े की व्यवस्था हो गई तो बात खत्म — फिर अपना आत्मिक कल्याण करो। बस वो व्यवस्थाएं ईमानदारी से मिलनी चाहिए।

प्रश्न: कोई आज ये वीडियो सुनकर सोचे कि चलो आत्म-कल्याण करेंगे — तो आत्म-कल्याण क्यों जरूरी है, ये उसे कैसे समझ में आए? कहीं ऐसा तो नहीं कि अशांति और दुख हो रहे हैं, इसलिए दूसरे ऑप्शन पे जंप मार रहे हैं? (P17-0012)

भाई, दो ही तो जीवन हैं — मैंने तो दो ही जीवन देखे; तीसरा कुछ हो ही नहीं सकता। एक तो ये प्रपंच भरा जीवन है, जो करके थक गए — हमें बताया जाता है कि नाम, सूरत, पैसे के लिए पद-प्रतिष्ठा पाओ, धन कमाओ, बड़े बनो; वो शरीर तक ठीक है। और एक, इस संसार में गुरु तत्व मिलता है, वो कहता है कि अपनी भी तो सोच — अपनी तो देख, तेरा क्या होगा?

प्रश्न: "तेरा क्या होगा?" — इस बात ने मुझे जैसे स्टैच्यू बना दिया। मैं तो रस लेने के लिए प्रपंच भरी दुनिया में गई और इतना रायता बिखेर दिया। अब ये डरावना सीन सामने है कि सच में मेरा क्या होगा। मैं ईमानदारी से इस पर काम करना चाहती हूं — कहां से शुरुआत करूं, क्या करूं कि मेरा पक्का इंश्योरेंस हो जाए? (P17-0013)

भाई, तेरा क्या? क्या तू ये शरीर है? शरीर तो थोड़े दिन में छूट जाएगा, तब तेरा क्या होगा? क्योंकि तूने शरीर तक के लिए किया है। ये शरीर कोई खत्म नहीं करेगा तो निमित्त बनेगा, ये प्रकृति खुद खत्म कर देगी। तो तेरा क्या होगा? तूने अपने लिए क्या किया, बता? क्योंकि ये तेरा धन भी काम नहीं आएगा, कपड़े भी काम नहीं आएंगे, तेरी प्रॉपर्टी भी काम नहीं आएगी, लोग भी काम नहीं आएंगे। यहां इस दुनिया में तूने जितना किया, एक शरीर की सुरक्षा के लिए — और वो शरीर भी खत्म हो जाएगा। तू जब इस शरीर से निकलेगा, तब तू कहां जाएगा? अब इसके लिए — जितने लोगों से मोह है, जितने लोगों से मुझे चाहिए, राग-द्वेष — पहले वहां से निकलना पड़ेगा। क्योंकि आप जहां हो, जब वहां से हटोगे, जब केंद्र पे आओगे, तब पता चलेगा मैं कहां जाऊं। आप कहीं खड़े थे और बहुत आगे निकल गए, तो पहले वो सब छोड़ के केंद्र पे आना पड़ेगा; केंद्र पे आओगे तब जवाब मिलेगा कि मैं जाऊं कहां। तो अभी तो निकलने के लिए काम करो — मोह, आसक्ति, बंधन, राग-द्वेष, इच्छा, अपेक्षा और "मेरा" के भाव से।

प्रश्न: जो लोग बाद में ये वीडियो सुनेंगे वो पूछेंगे — मोह से निकलें कैसे? (P17-0014)

जब मैं इस दुनिया में आया, किसी को नहीं पहचानता था; किसी ने बताया ये तेरी मां है, ये तेरा बाप है। लेकिन हमने मां-बाप, भाई-बहन, दोस्त-यार क्यों स्वीकार किया? क्योंकि उनसे मुझे कुछ मिला। उस भाई की याद ज्यादा आती है जो मेरी केयर करता है, मेरे तरीके से देता है; मां-बाप में से उसी की तरफ खिंचाव होता है जो मेरी केयर करता है; दोस्त वही पसंद आते हैं जो मेरी बात मानते हैं। आसक्ति कैसे हुई, बंधन कैसे हुआ? मुझे मेरे तरीके से जिसने भी दिया, उसके प्रति बंधन हो गया, आसक्ति हो गई — उसकी याद सताती है दूर जाने पे, "इसके बिना नहीं रह पाएंगे", क्योंकि उसने मेरी डिमांड पूरी की, मेरी भावनाओं को समझा। लेकिन वो दिया शरीर तक — शरीर की जरूरतें पूरी कीं, और वो मुझे बड़ा प्यारा लगने लगा। अब मुझे इससे निकलना है, लेकिन उसकी याद तब तक सताएगी जब तक वो चाहिए। मैंने "चाहिए" के माध्यम से उसे अपना बनाया — सीधा अपना नहीं बनाया; उसके थ्रू कुछ मिल रहा था। तो वो मिलने की इच्छा का पूरी तरह त्याग करना पड़ेगा। उसे आप सीधा नहीं छोड़ सकते; जिसके द्वारा पकड़े हो, वो छोड़ना पड़ेगा, तो वो छूट जाएगा।

प्रश्न: बहुत रिश्तों में ऐसा होता है कि हम कहते हैं — मुझे तुझसे कुछ नहीं चाहिए, बस तेरा साथ चाहिए। इसको कैसे समझें? (P17-0015)

साथ क्यों? साथ चाहिए तो इसका मतलब कुछ चाहिए; ऐसे थोड़ी ना साथ चाहिए। साथ इसलिए चाहिए कि तुमसे कुछ चाहिए — साथ मिल गया तो मुझे कुछ सोचना नहीं पड़ेगा, सहारा तू देखेगा। अगर कोई कह रहा है कि तेरा साथ चाहिए, तो उसे कोई व्यवस्था मत दो — तुम अपना खाओ-पियो, सब व्यवस्था यूज़ करो, उसे कुछ मत दो — देखो तुमको छोड़ के भाग जाएगा। "तुम मेरे साथ रहो, लेकिन खाना-पीना, बोलचाल हम तुम्हें कुछ नहीं देंगे" — क्योंकि वाणी भी तो देनी होगी। सिक्योरिटी गार्ड जितने से काम नहीं चलेगा, उसके बाद पेट भी तो है। आप खाओगे, उसको नहीं दोगे, तब पता चले ना कि उसे आपका साथ चाहिए था कि पेट भरने के लिए साथ चाहिए था — एक व्यक्ति भी आपके साथ नहीं रहेगा। अगर आप देखोगे — फाइनली मैं देख चुका हूं — एक गुरु के अलावा ऐसा कोई व्यक्ति इस पृथ्वी पर नहीं है जो आपका साथ आपके लिए चाहता है; वो आपका साथ अपने लिए चाहता है।

प्रश्न: मोह कैसे हटे — मुझे समझ आया कि मैं फंसी ऐसे कि उस व्यक्ति से मुझे अपने तरीके से कुछ मिला (मां से दूध, भाई-बहनों से लाड-दुलार); मेरी कोई कमजोरी थी जिसे उसने पोषण दिया। तो अब जो जरूरत मैं दूसरों से पूरी कर रही हूं, वो खुद से पूरी करूं, दूसरों का कंधा छोड़कर अपने आप को मजबूत करूं — तो आसक्ति की जड़ छूट जाएगी और मैं मूल में आ जाऊंगी। क्या यह सही है?

(P17-0016)

ऐसे भी नहीं छूटेगा, अपनी ताकत से। आप इस सृष्टि को समझो — यहां अगर आप कुछ एक जगह से दूसरी जगह रखोगे, तो बिना स्पेस के नहीं रख सकते। एक वस्तु आपने यहां रखी थी, आप खुश थे; बाद में पता चला कि ये जगह इसके लायक नहीं है। लेकिन अब उठाओगे तो रखोगे कहां? कब तक पकड़े रहोगे? कोई आधार चाहिए। तो इसे उठा के मुक्त जगह रखेंगे। गुरु कहा गया है — मैं वहां से अपने आप को शिफ्ट कर रहा हूं गुरु के पास; अब गुरु आधार बन रहा है, क्योंकि अभी तो मैं बंधन में हूं, अभी तो मैं "चाहिए" में हूं, और गुरु मुक्त है। तो मुझे सबसे अपने आप को छुड़ा लेना है, और गुरु के प्रति समर्पित कर देना है — गुरु मतलब ज्ञान का प्रतीक। अगर मैं सब जगह से छूट गया, तो गुरु तो बंधन वाली जगह ही नहीं है — तो मैं मुक्त हो गया। जैसे आनंद ने हर जगह से अपने आप को छुड़ा के बुद्ध में रख लिया, तो बुद्ध का जैसे शरीर छूटा, आनंद को उपलब्धि हो गई, क्योंकि बुद्ध लेन-देन से परे हो गए थे। (प्रश्न: तो पहले वहां "चाहिए" में थे, अब गुरु के पास भी "चाहिए" में आ गए?) हां, लेकिन गुरु तो मुक्त है ना — गुरु देता है, लेता नहीं है।

प्रश्न: भक्ति मार्ग हो या ज्ञान मार्ग, मैंने अपनी लाइफ में भी देखा है कि लोग रिश्तों वाली आसक्ति उठाकर किसी "गुरु" पर शिफ्ट कर देते हैं, और जिसे गुरु समझा वो उस स्थिति में था ही नहीं — इससे कई जिंदगियों से खिलवाड़ हुआ, जीवन और बखेड़ा हो गया। तो विवेक कैसे रखें कि मैं वहां न फंस जाऊं, कि वो अपनी कामना के लिए मुझे मोहरा तो नहीं बना रहा — गुरु को कैसे पहचानें? (P17-0017)

देखना ये है कि जब हम किसी शरीरधारी गुरु के पास गए — गुरु ज्ञान का प्रतीक है, लेकिन ज्ञान किसी शरीर के द्वारा ही निकलेगा — तो वो मुझसे बातचीत क्या कर रहा है। क्या कामनाओं की बात करता है, कि कामनाओं से मुक्त होने की बात करता है? बस कामनाओं की बात करता है, तो वो बना हुआ गुरु है, गुरु तो है नहीं। और कामनाओं से मुक्त होने के लिए हर पल बात कर रहा है, तो वह गुरु स्थिति में है। इस दुनिया में सबकी अपनी मर्यादाएं हैं — भाई भाई की तरह बात करता है, बाप बाप की तरह, दोस्त दोस्त की तरह; ऐसे ही गुरु गुरु की तरह बात करेगा। बहुत ध्यान से, बारीकी से इसी लाइन को समझ लोगे तो आप गुरु को पहचान लोगे: आपके पास जो है — धन, वैभव, जो भी — अगर उसको लेने की बात करे, उसकी सफाई की बात करे, तो बना हुआ गुरु है। और आपकी सफाई की बात हर वक्त, हर पल करता है — कहीं से बात की शुरुआत करो, लेकिन घुमा-फिरा के आपको आप पे ला के छोड़ देता है कि आप अपना कल्याण कर लो — तो वो परम गुरु है। इसी सूत्र से आप गुरु पहचान सकते हैं।

प्रश्न: योगी जी, कुछ लोग कहते हैं "मुझे कुछ नहीं चाहिए", अपने आप को ईमानदार भी कहते हैं, आपकी वीडियो देखना भी बंद नहीं करते — लेकिन आप जो स्पष्ट कहते हैं कि लाभ ले रहे हो तो कार्य में सहयोग करो, वो नहीं करते। इसे उनका भोलापन कहें या चालाकी? (P17-0018)

इसको भोलापन नहीं कहेंगे। वो अपने आप को बहुत शातिर समझता है, चालाक है — लाभ भी ले रहा है और कह रहा है मुझे कुछ चाहिए भी नहीं। मैं तो खुल के कहता हूं कि भाई, अगर सत्संग के द्वारा आपके जीवन में बदलाव हो रहा है, तो उस व्यक्ति के कार्य में तो सहयोग करो — उसे आप व्यक्तिगत कुछ नहीं दे पा रहे हो, तो कम से कम उसके काम में तो, जिस लायक आप हो। अगर नहीं कर रहे हो तो यही तो आपकी बेईमानी है। (और जिसने मेरे काम का उपयोग नहीं किया, उससे तो कोई डिमांड ही नहीं।) कार्य को फैलाएंगे तो उसमें अर्थ तो लगेगा; तो आप अर्थ को सत्कर्म में लगाओ ना, जहां से आपको लाभ मिल रहा है। सत्कर्म तो आपको करना ही पड़ेगा — ईमानदारी, सत्कर्म।

प्रश्न: योगी जी, आप कहते हैं ईमानदारी से जिएं ताकि नए बंधन न बंधें, और सत्कर्म करें ताकि पिछले कर्मों से उभरने में मदद मिले। लेकिन सत्कर्म भी हम अपने ही दिमाग से समझ लेते हैं — चींटियों को दाना डाल दिया, दरवाजे पर कोई आया तो भोजन करा दिया। तो सत्कर्म और क्या-क्या हो सकते हैं? (P17-0019)

सत्कर्म मतलब — जहां जरूरत है, जहां जरूरत है, वहां सहयोग करना: धन से, तन से, समझ से। ये सत्कर्म है। बिना सत्कर्म के आपका कल्याण नहीं होगा।

प्रश्न: सब कुछ प्रत्यक्ष है, अपनी समझ से समझ भी रही हूं, फिर भी शक पैदा कर रही हूं और अपने ऊपर शक नहीं कर रही; मुझे लगता है जैसे मैंने अपने आप को गहरी गुफा में छुपा दिया है कि आप वहां न पहुंच पाओ, और साथ ही चिल्ला रही हूं कि मेरा आत्म-कल्याण कर दो। मैं अपने आप को बचाना क्यों चाहती हूं? और ये मालिकपन का भाव जाएगा कैसे? (P17-0020)

बचाना इसलिए चाहते हो कि बचने में तो आप हो। बचने में लगता है कि देखो अभी भी मैं मालिक हूं, मैंने अपने आप को बचा लिया — मालिकपन का भाव जा नहीं रहा है, कर्तापन का भाव जा नहीं रहा है; बचाने में लगता है कि देखो मेरी समझ इससे ज्यादा है। मालिकपन का भाव तभी जाएगा जब कर्तापन का भाव जाएगा। ये कोई मालिकपना है? ये तो भिखारी से भी घटिया हालत है — ये आपको अभी लग रहा है क्योंकि अभी आप सत्संग में हो। आप अपने आप से बोझिल हो, उस बोझिलपन में ही आप हो, और चिल्ला रहे हो कि छुड़ाओ। गुस्से में मां भी बच्चे को कह देती है "तू मर जा", लेकिन उसका भाव मरने का थोड़ी रहता है — ऐसे ही आप दुख से इतना व्याकुल हो कि कह देते हो मुझे आत्मिक कल्याण करना है, इससे निकलना है, लेकिन सही पूछो तो अभी पूरी तरह निकलना नहीं है।

प्रश्न: मुझे कैसे पता चलेगा कि अब मैं सच में निकलना चाहती हूं, कि ये झूठ नहीं है? मुझे अपना मामला इतना उलझा हुआ दिखता है — मैं बातें ही कर रही हूं, समय बर्बाद कर रही हूं, या अभी भी खुद को बचा रही हूं? मैं करना क्या चाह रही हूं?

(P17-0021)

जब रियल में निकलना चाहोगे तो पता चल जाएगा; अभी तो प्लानिंग चल रही है। समय बर्बाद नहीं हो रहा है, क्योंकि आप कहीं ना कहीं अब समझना चाहते हो। समय बर्बाद तब हो रहा था जब आप वहां पे थे; अब तो आप समझना चाहते हो, अपने आप पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया — तो समझने में समय बर्बाद नहीं हो रहा है। आप प्रयास करते रहिए: हम क्यों अपने आप को बचाना चाहते हैं? बचा के करेंगे क्या? मैं बच भी गया तो क्या कर लूंगा? किससे बचा रहा हूं अपने आपको? कहां ले जाऊंगा? अगर मैं बच भी गया तो मेरा क्या होगा — आज बचा लूंगा, लेकिन कल तो खत्म हो जाऊंगा। ये सब अपने आप से पूछना है।

प्रश्न: आपने बताया कि कुटिया से पहले लोग आपको लाखों देना चाहते थे पर आपने नहीं लिया। मैंने तो पैसे को इतनी वैल्यू दी क्योंकि वो शरीर को सुख-सुविधा देता है और मेरा मान बढ़ाता है — पेट भर जाए तो बचे में मान खड़ा कर लूं। और आप 15-16 साल की उम्र में घर से निकले, एक कपड़े में फक्कड़ संन्यासी की तरह रहे, आपका कोई गुरु भी नहीं रहा। तो मैं ये बात अपने स्वभाव में लाना चाहूं तो शुरुआत कैसे करूं — क्या मैं भी सब कुछ छोड़ के एक कपड़े में रहूं? (P17-0022)

मैं जब समझने लायक हुआ और समझ बढ़ती गई, तो मैंने देखा कि पैसे को इतनी अहमियत क्यों दी जाती है? इससे व्यवस्थाएं मिलती हैं। व्यवस्थाएं किसे चाहिए? इस शरीर की जरूरत है। और इससे मान मिलता है — तो किससे मान की इच्छा रखें? ये तो खुद मान चाहता है, खुद दौड़ रहा है। तो मैंने देखा कि वैल्यू ना पैसे की है, ना व्यवस्था की है — वैल्यू मेरी जरूरत की है। अगर हमारी जरूरत ना हो तो ये सब पड़ा का पड़ा रह जाएगा। अब मेरी जरूरत क्या है? क्या ये उसे पूरा कर सकता है? नहीं — ये शरीर तक की जरूरत पूरी कर सकता है। मेरी जरूरत कुछ और है — भगवान, परमात्मा; और पता चला वो तब मिलेगा जब आत्मज्ञान होगा, तो मैंने आत्मज्ञान को महत्व दे दिया। अब पैसे को वैल्यू तो दे चुका था, शरीर की जरूरत भी है — तो मैंने कहा, तू एक काम कर, अपनी जरूरतें कम कर, जितने में तू जी सकता है। कम करते-करते मैं एक कपड़े पे आ गया, बिना बिस्तर का भी; भोजन मिले या ना मिले। तो पैसे से, व्यवस्था से आसक्ति हट गई और पूरी वैल्यू आत्मज्ञान को दे दी। जितने में शरीर चल जाए उतनी व्यवस्था कर ही लेता था; मुझे आज का भोजन चाहिए, कल की व्यवस्था कभी नहीं की, क्योंकि कल मैं रहूंगा कि नहीं; और इतनी समझ थी कि कल रहूंगा तो मिलेगा। तो मैंने समझ-समझ के अपने आप को निकाला — हर स्टेप पे अपनी ही धारणाएं तोड़ते रहे: आखिर ये क्यों? पहले समझा, बाद में तोड़ा; जरूरत में जीना चालू किया। और अगर मैं किसी व्यक्ति के चक्कर में पड़ा हूं, तो सीधा उसको नहीं छोड़ना था — मैं देखता था कि इसके पास कुछ है और मुझे चाहिए, तो मुझे क्यों चाहिए? उस व्यक्ति को छोड़ने के लिए कभी काम नहीं किया। देखा कि मैंने लालच में लोगों को पकड़ा था, तो लालच को पैदा ही नहीं होने दिया — पैदा हो, मार दो। चाहे जितना समय लगे; मुझे जल्दी भी नहीं थी, मैं सूझबूझ के साथ चलता था। फिर जब निकल गया तो सोचा, बहुत लोगों ने भोजन, कपड़े, रहने से, मान-अपमान से मेरी सहायता की है, तो अब जो निकलना चाह रहे हैं, उनके लिए काम करूंगा — धन सेवा, भोजन सेवा करने वाले बहुत हैं, कहानियां सुनाने वाले बहुत हैं, ज्ञान सेवा करने वाले बहुत कम। जो गड्ढे से निकल गया, वो तुम्हारे लिए गड्ढे में नहीं कूदेगा, लेकिन ज्ञान की रस्सी फेंकेगा — वो रस्सी इतनी

मजबूत है; पर रस्सी तुम्हें पकड़नी पड़ेगी। रस्सी पकड़ना मतलब उसके शब्दों में चलना; बस बातें ही कीं तो खींचे किसको?

प्रश्न: आपका भाव रहता था कि मैं जो भी कर रहा हूं — खाना, सोना, रोना, बात करना — मैं अपने लक्ष्य की तरफ ही पहुंच रहा हूं। तो अगर हम पथिक भी अपनी पूरी दिनचर्या में, ईमानदारी और सत्कर्म करते हुए, ये भाव रखें कि जो कुछ मेरे शरीर से, मन से, कल्पना में, डर में हो रहा है, उसका निचोड़ यही है कि मैं अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ रहा हूं, कि मेरा गुरु देख रहा है — तो ये मेरे लिए कितना कारगर होगा?

(P17-0023)

पूरी तरह। बस देखना ये है कि सच में मुझे उस काम के बदले कुछ नहीं चाहिए, बाहर से मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं इस काम को कर रहा हूं तो अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ रहा हूं — आत्मज्ञान की तरफ, अपने आप की तरफ, अज्ञानता से ज्ञान की तरफ; मेरी समझ विकसित हो रही है। अगर मुझे काम मिला है तो सामने वाले की जरूरत समझ के कर रहा हूं; प्रकृति ने मुझे मौका दिया है। लेकिन सच में इसके बदले मुझे कुछ नहीं चाहिए — ये आप कह पाओ अपने आप से। मैं कह पाता था कि मुझे आत्मज्ञान के अलावा कुछ नहीं चाहिए; हर कार्य उसी के लिए करता था — मुझसे कोई कुछ भी करवा ले, बस मुझे आत्मज्ञान हो जाए; मैं इस दुनिया में सबके बिना रह सकता हूं, इसके बिना नहीं; इसके बिना मैं अधूरा हूं। हफ्तों सोया भी रहूं तो सोने में यही चलता रहता था कि बस मुझे आत्मज्ञान हो जाए। इस भाव को मैंने एक पल भी कभी छोड़ा नहीं।

प्रश्न: तो क्या आज से मैं जो भी कर्म करूं, उसके पीछे यही भाव बनाऊं कि इस कर्म का जो परिणाम मिलेगा, उसमें मुझे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए? (P17-0024)

हां, पहले लक्ष्य बनाना है कि बस मुझे अब आत्मज्ञान चाहिए — एक यही लक्ष्य है; और अब मेरे द्वारा कोई भी कार्य होगा तो इसी के लिए होगा, और आप कार्य में देख पाओगे कि मुझे सच में कुछ नहीं चाहिए। कभी-कभी परिस्थितियां भी आएंगी — क्या इस काम के बदले भोजन चाहिए, व्यवस्था चाहिए? उस समय पता चलेगा; मेरे साथ ऐसा हुआ है। मैंने हमेशा व्यवस्थाओं को छोड़ दिया — तन पर बिस्तर नहीं, पेट में भोजन नहीं, चलने को शरीर में ताकत नहीं, फिर भी मैं चल दिया। या तो लक्ष्य पर पहुंच कर रुकूंगा, या चलते-चलते खत्म हो जाऊंगा — मैं दोनों में तैयार था; मुंह लक्ष्य की तरफ होगा, पीठ कभी नहीं। लक्ष्य की तरफ बढ़ते हुए सामने से कुछ आया तो जरूरत में उपयोग किया, लेकिन व्यवस्था के लिए कभी पीछे नहीं मुड़ा। एक बार मुड़ गए तो वेग, उत्साह सब खत्म हो जाएगा; और मुड़ के जिसका लोगे, उसे देना भी पड़ेगा, क्योंकि तुम अपने लिए मुड़े हो — फिर फंस गए, और यही भाव दोबारा बनाने में न जाने कितने जन्म लग जाएं। जो तुम्हारे लक्ष्य की ओर बढ़ने में आके सहयोग दे रहा है, तब देने की बात ही नहीं; लक्ष्य पर पहुंच जाओगे तब दोगे। बहुत उतार-चढ़ाव आए, लेकिन मैंने अपना साथ कभी नहीं छोड़ा; इस शरीर का साथ नहीं दिया, क्योंकि मालूम था ये नाश हो जाएगा — बचा तो ठीक, नहीं बचा तो भी ठीक, मैं तो हूं ना। ना इसे नाश करने का प्रयास, ना इसे बचाने के चक्कर में अपने आप को खोना। डर आया, भय आया, लेकिन मैंने डर-भय का साथ नहीं दिया — मैं सिर्फ अपना साथ दूंगा। मुझे अपना काम ईमानदारी से करना है, बस बात खत्म। मुझे आनंद भी नहीं चाहिए — आनंद मुझसे है तो मुझे क्यों चाहिए? "चाहिए" मतलब बाहर है। मुझे सिर्फ मैं चाहिए। बस इस भाव को प्रबल करते रहना है, और हर पल चेक करते रहना है कि क्या मैं अपना साथ छोड़ तो नहीं रहा? जैसे ही मैंने किसी भी चीज को महत्व दिया — डर को ही — तो मैंने अपना साथ छोड़ा।

प्रश्न: जब मुझे डर लग रहा हो, उस वक्त मैं क्या भाव बनाऊं? क्या एकांत में चली जाऊं, या रोना आए तो क्या करूं? (P17-0025)

इसमें समझ काम करती है। डर आया — पहले तो नहीं था, तो बाद में भी नहीं रहेगा; ये स्थिति-परिस्थिति के कारण आया है और चला जाएगा, तो मुझे इससे क्या मतलब। जैसे घर में मेहमान आ गया — एक-दो दिन हंगामा करेगा, चला जाएगा; घर तो मेरा है, उसका थोड़ी। वो परिचित है, तो उसका हंगामा झेल लेंगे — हंगामा भी इसलिए कर रहा है कि हम भी कभी उसकी जिंदगी में हंगामा किए। जब हम इसका कोई जवाब नहीं देंगे तो हंगामा कर-करके थक के चला जाएगा; अगर जवाब देता हूं तो हंगामा और तेज हो जाएगा। मुझे जवाब ही नहीं देना है — बस उसे देखते रहो, मेहमान चला जाएगा। प्रतिक्रिया ही मत दो; एकांत में भी मत भागो, क्योंकि भागना भी क्रिया होगी। आप जहां हो, जो अपना रूटीन का काम है, उसी में लगे रहो; उससे बचने का कोई साधन ना करो। बचने का साधन किया, करते ही वो हावी हो गया, क्योंकि आपने उसे वैल्यू दे दी — अब वो जल्दी जाएगा नहीं। अगर आप अपना काम करते रहते, तो उथल-पुथल करता, देखता कि रिस्पांस ही नहीं मिल रहा, तो भाग लेता। (आंसू आएं तो आने दो — "मैं थोड़ी रो रहा हूं", ये अंदरूनी समझ रखनी है।) आप वैल्यू नहीं दोगे तो धीरे-धीरे वो आना ही छोड़ देगा।

प्रश्न: गुरु जी, एक प्रश्न है — आत्मज्ञानी और ब्रह्मज्ञानी में क्या अंतर है? (P17-0026)

आत्मज्ञान मतलब खुद का ज्ञान — आत्मा खुद को बोला गया है। ब्रह्मज्ञानी मतलब ब्रह्म का ज्ञान। अब ब्रह्म को, पारब्रह्म को, परम ब्रह्म को लोग अलग-अलग मानते हैं, लेकिन कितने को भी मान लो, आखिरी में एक ही सत्ता है — सबने इस बात को स्वीकार किया है। किसी ने आखिरी शिव को माना है, किसी ने उससे ऊपर किसी को माना है, तो उसने भी आखिरी माना है। अगर यात्रा की शुरुआत करोगे तो पक्का आखिरी तक पहुंचने वाले हो — जैसे-जैसे पता चलेगा कि "नहीं, इससे आगे कुछ है", वहां पहुंचकर पता चल जाएगा, क्योंकि आप यात्रा कर रहे हो। ब्रह्म के बारे में हमने बस सुना है — वो हो भी सकता है, नहीं भी। इस भवसागर को पार करके उस तक चले गए तो ब्रह्म; पार करके गए तो पारब्रह्म; और मिलना हो गया तो परम ब्रह्म — यही ब्रह्म, पारब्रह्म, परम ब्रह्म की परिभाषा है। और आत्मज्ञान के बाद ही इसकी यात्रा हो सकती है, आत्मज्ञान के पहले हो ही नहीं सकती। जब तक आप क-का-कि नहीं सीखो, मिलावट अक्षर नहीं पढ़ सकते; अगर उसके पहले पढ़ रहे हो तो रट्टा होगा। कोई संशय हो तो निसंकोच बोलिए — हां में हां नहीं करना है, प्रश्न को पूरी तरह खत्म करना है। और जहां दबाव और संकोच में बात करनी पड़े, वहां रुकना ही मत; जहां खुलकर अपनी बात रख सको और सीधा-सादा उत्तर मिले, वहीं रुकना चाहिए। कोई कहे "आप नहीं समझ सकते, मैं समझ गया" — तो वो बेवकूफ बना रहा है; एक ही से सब है, तो आप समझ गए तो मैं क्यों नहीं समझ सकता — मेरी कमी तो बताओ।

प्रश्न: गुरु जी, शास्त्रों में तीन अवस्थाएं बताई गई हैं — जीव, शिव और पीव। शिव को ब्रह्म अवस्था पर बताया गया और उसके बाद पीव की सर्वोच्च अवस्था। कई लोग ब्रह्म तक ही सीमित कर लेते हैं कि हमारे तो फाइनल परमात्मा हो गए — तो ब्रह्मज्ञानी पूर्ण स्थिति कैसे है? (P17-0027)

मान तो सब आखिरी ही रहे हैं; जब वहां जाएगा तो उसे पता चल जाएगा कि इसके आगे भी कुछ है। दो व्यक्ति एक जगह खड़े हैं — एक कह रहा है 1 किलोमीटर तक आखिरी है, दूसरा कह रहा है उससे आगे भी है; 1 किलोमीटर तक तो दोनों को जाना ही पड़ेगा, उसके बाद ही पता चलेगा। जो ब्रह्म तक नहीं पहुंचे उनके लिए ब्रह्म भी संशय है — आप भरोसा करते हो इसलिए मानते हो। शिव कहो, पीव कहो, परमेश्वर कहो, परमात्मा कहो — एक ऐसी अनंत शक्ति इस ब्रह्मांड में है जो पूरे संसार पर नियंत्रण करके रखी है। अगर आप तीन अलग-अलग मानते हो, तो भी बिना ब्रह्म पार किए पारब्रह्म तक नहीं पहुंच सकते, और पारब्रह्म के बाद परम ब्रह्म। मैं तो तीनों को एक ही मानता हूं — पानी से बुलबुला है, आखिर में एक ही है; स्थिति अलग है, लेकिन पहुंचना उसी एक तक है। जीव का तो नाश होगा — पहले अपने में (स्व में) आना पड़ेगा; जो स्व में आ जाएगा वो सीधा उस तक जाएगा; जीव नहीं, आत्मा मिलेगा। इसीलिए देवता भी इस मानव शरीर को तरसते हैं — इस शरीर से ही परमात्मा से मिलना हो सकता है। मैं भी आत्मज्ञान के पहले समझता था कि आत्मज्ञान फाइनल है; जब आत्मज्ञान पर पहुंचा तो समझ आया — अब तो यात्रा की शुरुआत हुई, अभी तो स्व में स्थित हुए, अभी तो यात्रा के लायक बन रहे थे। जैसे आगे बढ़ोगे वैसे आगे का रास्ता दिखता है। डिबेट करके क्या मिलेगा? तब तक खोजते रहो जब तक मिल न जाए; किसी व्यक्ति विशेष को कभी मत पकड़ना — जैसे बीमार हो तो ठीक होने तक डॉक्टर बदलते हो। हम गुरु के पास परमात्मा के लिए गए थे, उस शरीर के लिए नहीं — पर मोहित होकर गुरुओं के बीच रह जाते हैं और लक्ष्य भूल जाते हैं। गुरु शब्द है, शरीर नहीं। जिस पर उसकी कृपा हुई है, हमें उसकी कृपा चाहिए — वाया क्यों लूं, मुझे सीधा चाहिए। गुरु भी यही चाहता है कि आपको सीधा मिला दे और बीच से हट जाए; उसने रास्ता देखा है, इसलिए बस रास्ता बता रहा है — क्योंकि जन्म-मरण के इस खेल से बाहर तो निकलना ही है। चाहे तीन समझो चाहे एक, आखिरी यात्रा परम ब्रह्म तक ही होगी, उसके पहले रुकना नहीं।

प्रश्न: गुरु जी, साधना कैसे करें? (P17-0028)

बस अपने आप को साधें, अपने आप को निर्विकार कराएं, सत्कर्म करें — पशु-पक्षियों को भोजन कराएं, दाना खिलाएं। और आंतरिक ईमानदारी, मेहनत, और "मेरे कर्म से किसी को तकलीफ ना हो" — इस भाव को रखते हुए जीवन में आगे बढ़ें, सत्कर्म करें — यही साधना है।

प्रश्न: गुरु जी, कुछ लोग टोना-टोटका करते हैं, नजर लगाते हैं — क्या किसी की नजर लगती है? इससे बचने का उपाय बताइए। (P17-0029)

ईमानदार बन जाओ, सत्कर्म करो — ना किसी की नजर लगेगी, ना टोटका लगेगा।

प्रश्न: गुरु जी, साधक की दिनचर्या कैसी होनी चाहिए? (P17-0030)

चाहे जैसे भी हो, आंतरिक ईमानदारी, मेहनत और "मेरे कर्म से किसी को तकलीफ ना हो" — इस बात का ध्यान रखते हुए जीवन में आगे बढ़ो, और सत्कर्म में अपने आप को लगा दो — भूखे को भोजन, प्यासे को पानी — बिना ये देखे कि वो इस लायक है या नहीं। सेवा में अपने आप को लगाओ — यही साधना है।

प्रश्न: गुरु जी, ध्यान करने पर मैं शून्य में नहीं पहुंच पाता। जागने पर विचार कम आते हैं, मगर ध्यान करने बैठूं तो एक विचार जाता है तो दूसरा आ जाता है — ध्यान में विचारहीन कैसे हों? (P17-0031)

विचारहीन अगर होना भी चाहते हो, तो फिर उठोगे तो विचारों में आ जाओगे। विचारों में राग-द्वेष ना हो, बस इतना ध्यान रखो। राग-द्वेष उठ रहा है तो क्यों उठ रहा है, उसकी क्या वजह है — उससे निकलो। विचारों को रोकने का प्रयास मत करो; विचार प्राकृतिक आते हैं। विचार से आप मुक्त नहीं हो सकते — जब तक जीवन है, विचार आते ही रहेंगे।

प्रश्न: गुरु जी, तत्वदर्शी क्या होता है? (P17-0032)

तत्वदर्शी — आत्मदर्शी। जब आत्मबोध होगा, आत्म का बोध होगा, तब आप तत्वदर्शी हो सकते हो। आत्मबोध मतलब स्वयं का बोध, आत्मज्ञान — उसके बाद ही तत्व का ज्ञान होगा। अभी जो ज्ञान है वो बस जानकारी है। पांच तत्वों की जानकारी है आपको, बोध नहीं; बोध तभी होगा जब आत्मबोध होगा, और आत्मबोध के बाद हो ही जाता है — जैसे आप पढ़ना सीख लिए तो कुछ भी लिखा देख लिया तो पढ़ ही लोगे, रोक भी नहीं सकते। उस एहसास को क्या बोलें — बोलने वाला ही खत्म हो गया; आत्मज्ञान शब्दों में नहीं बताया जा सकता, पर आत्मज्ञानी से जो शब्द निकल रहे हैं उनसे पता चल जाता है कि वो आत्मज्ञानी है या नहीं। तो आत्मबोध के चक्कर में पड़ो — किताब पढ़नी है तो पहले क-का-कि आए। जगत भी उसी से है और आप भी उसी से हो; अपने आप को समझ लिया तो इस जगत को भी समझ लोगे। पहले अपने आप को समझो — फिर जैसे पढ़ना सीखने के बाद हर पेज साफ होता जाता है, वैसे चीजें साफ होने लगती हैं।

प्रश्न: गुरु जी, जो ध्यान मार्ग से साधना करते हैं, उनको पूर्व पापों को काटने के लिए क्या नाम या मंत्र जाप करना आवश्यक है? (P17-0033)

मंत्र-जप कुछ करो या ना करो, सत्कर्म करना आवश्यक है। सत्कर्म नहीं करोगे तो पिछला कर्म नहीं कटेगा।

प्रश्न: गुरु जी, यह कहा जाता है कि पकड़ना है तो एक गुरु को पकड़ो, वही तुम्हें पार करा देगा; यदि गुरु बदलते ही रहे तो कहीं नहीं पहुंचोगे — इस पर क्या कहेंगे?

(P17-0034)

गुरु पकड़ो — तो गुरु को शरीर मानते हो कि शब्द? गुरु शब्द है। पानी नहीं आ रहा तो नल को पकड़ के क्या करोगे — प्यासे मरोगे। आप नल के पास पानी के लिए गए थे; पानी नहीं आ रहा, या गंदा आ रहा है, तो उसे पकड़कर बीमार होगे — दूसरा नल देखो, क्योंकि नल निमित्त है। जब तक मेरा आत्मिक कल्याण नहीं होगा, एक नहीं हजारों गुरु बदलूंगा — क्योंकि गुरु एक ही होता है, शरीर अनेक; पृथ्वी से पानी एक ही जगह से आता है, नल अनेक हैं। मैं गुरु खोज रहा हूं, ना कि शरीर। गुरु ज्ञान का प्रतीक है — गु मतलब अंधकार, रु मतलब प्रकाश; जिसके अंदर आत्मा को प्रकाशित करने की क्षमता है, वो गुरु। "गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देव महेश्वर" — ब्रह्मा सृष्टिकर्ता: इस पिंड के सृष्टिकर्ता पिता को देखा; विष्णु पालनकर्ता: मां दो बार पालती है — एक बार संसार में आने योग्य बनाती है, एक बार मल-मूत्र साफ करके चलने-फिरने योग्य; महेश्वर संहारकर्ता। जो अपने जन्म-मरण से मुक्त हो जाए वो ब्रह्मा को पार कर गया, जो अपने पालन से भी मुक्त हो जाए वो विष्णु को पार कर गया, और जो अपना स्वयं का — अपने बनाए हुए अस्तित्व का — संहार कर दे, निर्विकार हो जाए, वो महेश को पार कर गया। ये तीनों को पार कर गया — "गुरु साक्षात परब्रह्म": पर मतलब परछाई, पर मतलब पार कराने वाला, पर मतलब परम ब्रह्म का स्वरूप हो गया; बस इतना फर्क है कि वो निराकार है, ये साकार। साकार में आना ही पड़ता है, क्योंकि बिना साकार के आप कुछ ग्रहण भी नहीं कर सकते — शब्द से कल्याण होना है; आपकी इतनी सामर्थ्य नहीं कि खुद निकल जाओ, इसलिए वो गुरु के रूप में आता है — "गुरु बिन ज्ञान ना हो"। लेकिन कौन सा गुरु? जो तीनों को पार कर गया हो; तीनों में से एक में भी अगर अटका है तो गुरु योग्य नहीं है।

प्रश्न: गुरु जी, विकारों से ऊपर उठने का उपचार बताएंगे? **(P17-0035)**

बस विकार वाला काम करना बंद कर दो — बेईमानी बंद कर दो, ईमानदारी अपना लो, सत्कर्म करो, आंतरिक ईमानदारी अपना लो — बस बात खत्म।

प्रश्न: गुरु जी, वो चीज अभी क्लियर नहीं हुई — "गुरु साक्षात परब्रह्म" में तो गुरु और परब्रह्म दोनों को एक ही बोला गया है; तो दोनों एक हैं या अलग-अलग? (P17-0036)

अब आप पूछोगे कि दोनों एक ही हैं कि अलग-अलग, तो आपसे कहा जाएगा — अलग-अलग। क्यों? क्योंकि आप द्वैत में खड़े हो, राग-द्वेष में हो; आपसे एक नहीं बोला जा सकता। अगर कह दिया जाए कि दोनों एक ही हैं और आपको पक्का हो जाए, तो आपकी यात्रा ही नहीं होगी — क्योंकि आप जान नहीं पाए, समझ नहीं पाए, बस मान लिया कि ये तो मिल गए, तो आगे यात्रा क्यों करना। और आप रूप को पकड़ोगे — फिर फंस गए, गुरु के पिंड में फंस जाओगे। आप इस पिंड के पीछे देख ही नहीं पा रहे; आप में इतनी क्षमता नहीं कि पिंड के अंदर वाले को पकड़ लो, क्योंकि आप अपने पिंड के अंदर वाले को आज तक नहीं पकड़ पाए। इसलिए कहा जाता है कि दो हैं — गुरु अलग है, ब्रह्म अलग है; वो निराकार है, ये साकार। अब इस पिंड को माध्यम बनाकर, इसके द्वारा जो ज्ञान निकले, उस ज्ञान के द्वारा अपने आप तक पहुंचो, और अपने द्वारा उस तक पहुंचो। जिसका सहारा ले रहे हो वो अलग नहीं है, लेकिन आपके लिए अलग है — तभी आप उस तक पहुंचोगे। जिस पिंड को देख रहे हो उसका नाश हो जाएगा; ये बस काम करने के लिए मिला है।

प्रश्न: गुरु जी, इस शरीर को छोड़ने के बाद की यात्रा के बारे में कुछ बता सकते हैं? (P17-0037)

क्या बताएं — जब शरीर छूटेगा तो खुद यात्रा करना और देख लेना, अनुभव करना। जहां हो वहां की बात करो; शरीर छूटेगा तो देखेंगे कैसी यात्रा है — वो तो हर कोई अनुभव लेगा, इंतजार करो।

प्रश्न: गुरु जी, गृहस्थ जीवन में भोजन कैसा रहे? गलत खाने की आदत कैसे छोड़ें? (खाने में बहुत ध्यान जाता है।) (P17-0038)

उचित खाएं और ईमानदारी का भोजन करें। गलत खाने की आदत — छोड़ दो, सीधा-सादा; जो गलत लग रहा है उसे छोड़ दो। छोड़ना बहुत सरल है, हमने जटिल बना दिया है — पता भी है कि गलत है।

प्रश्न: गुरु जी, मुझे आप जैसी मस्ती चाहिए। (P17-0039)

"कुछ नहीं चाहिए" में आ जाओ — बस, मस्ती ही मस्ती। कुछ नहीं चाहिए तो मस्त है ना। अपनी लकीर को मिटा दो, हो जाओ फकीर — ना आगे, ना पीछे — हो गई मस्ती।

प्रश्न: गुरु जी, ध्यान कैसे करें? (P17-0040)

हर काम को ध्यान से करें — कोई गलती ना हो, कहीं त्रुटि ना हो। कर्म करते हुए विशेष ध्यान रखें कि छल, कपट, चोरी, बेईमानी, प्रपंच, धूर्तता, पाखंड ना हो; ईमानदारी से जीवन जिएं, सत्कर्म में अपने आप को लगाएं। इसके बाद रोज एक-दो घंटे अपने आप में बैठें, जहां कुछ भी ना हो — तन पर बस हल्का कपड़ा हो, कोई विधि नहीं, ना कुछ समझना है, ना कुछ करना है — बस दृष्टा होकर देखते जाइए क्या हो रहा है; धीरे-धीरे समझ में आने लगेगा। इस दौरान जो विचार आएंगे उनको भी दृष्टा बनकर देखते जाइए।

प्रश्न: गुरु जी, अंतःकरण — जिसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार कहते हैं — ये किस तरीके से काम करते हैं? और "मन को मार गगन चढ़ जाई, मानसरोवर पैठ नहाई" — तो क्या मन को मारना पड़ता है? (P17-0041)

बस बाहर से — मान लीजिए आप दूर बैठे हो, कोई आपको खटाई दिखाए; आपने उसका स्वाद पहले लिया है, तो आपकी लार खट्टी बनेगी; मिठाई दिखाए तो वैसी। आपके अंदर था, लेकिन बाहर का देखकर जागृत हुआ; अंदर विद्यमान नहीं रहेगा तो जागृत नहीं होगा। मन को नहीं मारना पड़ता — मन जिससे चलता है उसको मारना पड़ता है। जड़ में जाइए — मन किससे चलता है? वो आपसे चलता है। जीव को मिटाना है, बाकी सब मर जाएंगे। ये रहस्यमय ज्ञान है, रहस्य में बोला गया — मन के द्वारा ही अपने आप को मार सकते हो, बिना मन के तो मार भी नहीं सकते। अगर सीधा लिख देते "अपने आप को मारो", तो आप उल्टा-सीधा काम कर लेते, अपने आप को सीधा मारने चल देते; आप इसका दुरुपयोग ना कर पाओ, इसलिए घुमाकर बोला "मन को मार"। लेकिन मन चलता कहां से है, यह देखना है — मन है भी और नहीं भी; जो है भी और नहीं भी, उसे क्या मारोगे? जीव से मन चल रहा है। जिसे "चाहिए" है, उसे मारना है।

प्रश्न: गुरु जी, बुद्धि का काम क्या है? निर्णय कौन लेता है — बुद्धि या जीव? (P17-0042)

बुद्धि में निर्णय लेने की क्षमता है कि क्या अच्छा है, क्या बुरा — ये बुद्धि का काम है; लेकिन सब निर्णय आप लेते हो। "आप" मतलब — इच्छा-अपेक्षा में हो तो जीव, इच्छा-अपेक्षा से मुक्त हो गए तो आत्मा। जब तक मुक्त नहीं हुए, निर्णय लेता तो जीव है, लेकिन कामनाएं करवाती हैं। बुद्धि शरीर का एक अंग है, जैसे कान, आंख, नाक — सब अपना-अपना काम करते हैं; सबके पीछे आप हो, कंट्रोलिंग पावर जीव है। जैसे गाड़ी — सारा कंट्रोल ड्राइवर करता है; ब्रेक गाड़ी रोकने के लिए, एक्सीलेटर आगे बढ़ाने के लिए, गियर स्पीड के लिए — सबका अलग-अलग काम है; ब्रेक कभी नहीं कहेगा "मुझे मारो, आगे खतरा है" — मारो चाहे ना मारो, आपकी मर्जी। एक्सीडेंट हुआ तो ब्रेक नहीं, ड्राइवर पकड़ा जाएगा। बुद्धि बस बताती है, निमित्त है; जीव को अच्छा चाहिए तो अच्छा ले लेगा, बुरा चाहिए तो बुरा। और अगर जानकारी नहीं है तो बुद्धि बता भी नहीं पाएगी — लोहे की रॉड लाल करके उस पर पॉलिश मार दी जाए और जानकारी नहीं है, तो आप हाथ में ले लोगे, जलने के बाद पता चलेगा। जैसे बालक किसी भी जंतु को पकड़कर मुंह में डालने लगता है — उतना विवेक, उतनी समझने की क्षमता उसमें अभी नहीं। सबका बुद्धि का स्तर अलग-अलग है, सबको समझने की क्षमता अलग-अलग दी गई है; जैसी गाड़ी मिली, वैसा चलाए।

प्रश्न: गुरु जी, कोई कट लग जाए, एक्सीडेंट हो जाए, तो जो दर्द होता है वो किसको होता है? (P17-0043)

"मेरा" के भाव को। मान लीजिए आपके पास कोई सामान है और उसे कुछ हो जाए तो दुख होगा; लेकिन होने से पहले आपने उसे बेच दिया और एक घंटे बाद कुछ हुआ, तो दुख नहीं होगा — क्योंकि "मेरा" का भाव छूट गया। जिसने "मेरा" का भाव बना रखा है, उसको दुख है। सामने से लाश गुजर जाती है तो कहते हो "इसकी आत्मा को शांति मिले", और कोई कह दे कि आपके परिवार का सदस्य है, तब और दुख होगा — क्योंकि मेरा है। जहां-जहां "मेरा" का भाव है, उसी से दुख है — मेरा शरीर, मेरे लोग। "मेरा" का भाव खत्म हो जाए तो ना सुख ना दुख — आनंद। पक्का हो जाए कि इस उंगली को कटाने से सारा हाथ बचेगा, तो कटवाकर खुश हो जाते हो; पर कुछ ना हुआ हो तो कटवाने में दुख है। जहां से मुझे सुख मिलता है, उसे कुछ भी होगा तो दुख होगा — चाहे मेरा शरीर हो, चाहे मेरे लोग; और जब "मेरा" ही मुझे दुख देने लगे, तो उसे अलग कर देते हो।

प्रश्न: गुरु जी, जो इस जीव वाली स्टेज से ऊपर उठ जाता है — जो भ्रम में नहीं है, कामनाओं से हट गया — उसको अगर दिक्कत आए, उसका हाथ कट जाए, तो दर्द किसको होगा? (P17-0044)

शरीर के दर्द को महसूस करेगा, क्योंकि शरीर चेतन है — दर्द होगा, लेकिन उसे समझ में आ जाएगा कि ये मेरा दर्द नहीं, शरीर का दर्द है। ऐसा नहीं कि इलाज नहीं कराएगा — इस शरीर का उपयोग करना है तो कराएगा, नहीं तो जरूरत क्या है, छोड़ भी देगा। अज्ञानता में दर्द सहा नहीं जाता; ज्ञान में कितना भी कष्ट हो, एकदम सह लेता है — आंख से आंसू भी आएं तो उसे भी वो देखेगा। अभी इंद्रियां हमें चलाती हैं — असल में इंद्रियां नहीं, कामनाएं हमें चला रही हैं; कामनाएं छोड़ दो तो इंद्रियां आपके वश में आ जाएंगी, आप उनके मालिक हो जाओगे। इसमें इंद्रियों का दोष नहीं, दोष आपका है — सबके मूल में आप हो: कामनाओं में हो तो जीव, कामनाओं से मुक्त हो गए तो आत्मा। जैसे मोबाइल में सिम है — सिम को तोड़ दो, जला दो, पर नंबर का कुछ नहीं होता; आईडी दिखाओ तो वही नंबर नई सिम में आ जाता है। ऐसे आत्मा का कोई कुछ नहीं कर सकता; जब भी नाश होगा, जीव का होगा।

प्रश्न: गुरु जी, मैंने एक बार ध्यान में ओम की साउंड और वाइब्रेशन सुना, अब दोबारा नहीं सुन पाता — मार्गदर्शन करें। (P17-0045)

कोई बात नहीं, आगे बढ़ो। दोबारा क्यों सुनना चाहते हो?

प्रश्न: गुरु जी, आप बहुत सारे आश्रम गए हो। मैं आर्ट ऑफ लिविंग गया, वहां सब पैसों से ही होता है — क्या यह सही है? मैं वहां जाऊं? क्या वहां जाकर भी हम अटक जाते हैं? मुझे कहां जाना चाहिए? (P17-0046)

कहां जाना है, ये आपको ही तय करना है। कोई और तय करेगा तो वो थोपा हुआ होगा।

प्रश्न: गुरु जी, हमने कबीर पंथ में पढ़ा कि मन को बुरा बना रखा है — मन को ज्योति निरंजन, काल कहा जाता है, और "अपना रूप पहचान" जीव को कहा जाता है। आप कहते हैं मन सबसे सहायक है — ये कैसे? (P17-0047)

मन ना पवित्र है ना अपवित्र, उससे ऊपर है। मन इंगित करता है — आपको बाथरूम लगी तो मन बताएगा, नहीं करोगे तो चड्डी में हो जाएगा; मन आपकी जरूरत बताता है, अब जीव जाकर करे तो ठीक, नहीं करे तो आपकी मर्जी; जब काम हो जाएगा तो मन इंगित करना छोड़ देगा। भूख लगी तो मन बताता है, खा लिया तो मन भोजन पर जाएगा ही नहीं जब तक दोबारा भूख ना लगे। "मेरा मन शराब पीने का कर रहा है" — मन नहीं कर रहा, जीव को पीनी है, आपने पहले पी है, मन बस बता रहा है कहां मिलेगी, कैसे मिलेगी; वो सबसे वफादार है — अच्छा करो चाहे बुरा, रोकेगा नहीं, बताएगा; और गलत काम करके पछताता कौन है? जीव। जैसे मोबाइल-कंप्यूटर में एरो — सबकी जगह है, एरो की जगह नहीं; माउस चलाओ तो तुरंत आता है; एरो कभी नहीं कहता "ये देखो", जीव डिसाइड करता है; एरो के द्वारा ही सब लाए हो और एरो के द्वारा ही डिलीट भी कर सकते हो — "चाहिए" में भी मन से गए, "चाहिए" से मुक्त भी मन के बिना नहीं हो सकते। मन रुक जाए तो ब्रेन हैंग — कुछ कर ही नहीं पाओगे। विचार भी मन से नहीं, देश-काल-परिस्थिति से निकलते हैं — गटर आया तो गटर का विचार आया, आंखों ने देखा। लोगों ने मन को विलन बना दिया, बदनाम कर दिया, खुद को बदनाम नहीं कर पाए — हर व्यक्ति करता खुद है, दोष मन को दे देता है। मैं थोप नहीं रहा, प्रत्यक्ष बता रहा हूं — उधर जो बोला गया और इधर जो समझा, जिससे आपका कल्याण हो वो उठा लो और निकल लो; पहले एक ही ऑप्शन था, अब दो हैं — अपनी समझ से चुनाव करो। मैं ये नहीं कहता उसे छोड़ो, इसे पकड़ो; ज्ञान किसी व्यक्ति विशेष का नहीं होता, जिसने समझा उसका हुआ। मेरा भाव बस इतना है कि आपका कल्याण हो, कहीं से हो जाए; आपका एक-एक क्षण भी खराब ना हो — और आप उनके मार्ग पर भी चलोगे तो भी मैं अपनों की कुटिया में आपकी सेवा करूंगा।

प्रश्न: गुरु जी, आप जो ध्यान की प्रक्रिया अपने आश्रम में कराते हैं, उसे घर पर कैसे कर सकते हैं? कृपया बताने की कृपा करें। (P17-0048)

मैं कुछ नहीं करवाता, सब अपने आप होता है। मेरा भाव बस इतना है कि लोगों का कल्याण हो, और सच में हो — इसलिए मैं काम कर रहा हूं। यह मार्ग प्रत्यक्ष है; यहां भरोसे वाली बात नहीं है, विश्वास वाली बात नहीं — विश्वास के पार वाला यह मार्ग है। आपको मुझ पर भरोसा नहीं करना है; यह तरीका है — ऐसे कर लो और जाकर देख लो। आपके पास और तरीके हैं, तो एक तरीका और मिल गया — कभी भी अपना लेना; क्योंकि आपने समझा तो आपका ज्ञान हुआ, मेरा तो है नहीं; मुझे खोजने की जरूरत भी नहीं है। जो मैं बता रहा हूं वो करना है तो कर लो — एक और ऑप्शन ले लो, आखिर में आजमा लेना।

प्रश्न: गुरु जी, ईमानदारी से जगत-व्यवहार करना, दृष्टा भाव में रहना, कर्तापन से दूर, ईश्वर में श्रद्धा, "कुछ नहीं चाहिए" में रहना — इस साधना पथ पर जीने से कब तक आत्म-सत्य का दर्शन होगा, और तब क्या अनुभव होगा? मार्गदर्शन दें।

(P17-0049)

"कुछ नहीं चाहिए" में जिस समय आ गए, उसी समय आत्मज्ञान होगा। "कुछ नहीं चाहिए" में आ गए — तो समाधि की स्थिति, उसी के बाद आत्मज्ञान होता है। जब ज्ञान हो जाएगा तो समझ में आ जाएगा।

प्रश्न: गुरु जी, कहा जाता है कि मन ही काल है — इस पर क्या कहेंगे? (P17-0050)

मन अगर आपका रुक जाए तो ब्रेन खत्म, जिंदगी नरक। काल क्या है? इच्छा-अपेक्षा। इच्छा-अपेक्षा में हो तो काल आएगा, मार के ले जाएगा — जब मृत्यु आएगी तब काल आएगा। एक-एक क्षण आप मृत्यु की तरफ जा रहे हो, ये भी काल है — भूतकाल, वर्तमान काल, भविष्य काल, रात्रि काल — सब चीज के पीछे काल लगा है, ये काल का ही लोक है, इसलिए उसे काल कहा गया। मन काल कैसे होगा? मन तो इंगित कर रहा है। एक बात ध्यान से समझो — जिन महापुरुषों को उपलब्धि हो गई, काल से मुक्त हो गए, कामनाएं भी खत्म हो गईं — अगर मन काल था और भोजन की जरूरत काल को थी, तो काल तो गया; फिर उन्होंने भोजन क्यों किया, लोगों से भोजन क्यों मांगा? वो शरीर के लिए भोजन कर रहे थे। दोहा है — "पाप पुण्य दो जाल, सारा जग भोजन बना, खाने वाला काल" — इसमें मन को काल नहीं बोला गया। जब तक पाप-पुण्य में हो, इच्छा-अपेक्षा में हो, तब तक काल एक दिन आएगा, आपको खाएगा ही; और इच्छा-अपेक्षा से मुक्त हो गए तो काल का काम खत्म — काल से कोई मतलब नहीं। मन तो आपका सबसे सहायक है। गाड़ी ठोक दी तो ब्रेक पकड़ा जाएगा कि ड्राइवर? ड्राइवर — जीव। एक ज्ञान मिला, एक और मिला — दोनों पास में आ गए, तो जो सही है उसे ले लो; खंडन क्यों कर रहे हो? बताना बंद करो, अभी आप सीखने वाले हो; दोनों में से एक पकड़ लो जिसे पकड़कर पार हो, तब जाकर फाइनल बोलना। खोजी बनिए, गुलाम मत बनिए।

प्रश्न: गुरु जी, भगवान है या नहीं? अगर है तो साबित कैसे करेंगे? (P17-0051)

जो बोले "है", उससे साबित करवाओ। मैं तो इतना कह रहा हूं — भगवान हो या ना हो, आप हो ना; बस बात खत्म। भगवान होगा तो वो जाने, नहीं होगा तो वो जाने; आप हो, इसमें संशय तो नहीं है — बस आप अपना कल्याण करो।

प्रश्न: गुरु जी, मोक्ष कैसे मिलता है? (P17-0052)

बस पाप-पुण्य से अपने आप को छुड़ा लो, इच्छा-अपेक्षा-कामनाओं से छुड़ा लो, निर्विकार करा लो — बस खत्म।

प्रश्न: गुरु जी, मैं पहले विकार में था, अब उससे बाहर हूं; पर दुनिया विकार के पीछे है, तो मुझे लगता है मैं भी वही करूं। विकार छोड़ता हूं तो कुछ करना नहीं पड़ता, फिर लोगों को देखकर दुविधा में अटक जाता हूं — क्या करूं? (P17-0053)

जैसे जीना है जियो — जो करोगे उसका परिणाम आएगा, इतना ध्यान रखना।

प्रश्न: गुरु जी, जो हमारी इंद्रियों के जरिए अनुभव अंदर जा रहा है, वो चित्त में स्टोर होता है — अचेतन मन — और सोते समय या कुछ भी करते समय वहां से चीजें निकल-निकलकर सामने आती हैं, दिमाग में घूमती रहती हैं। इसका क्या करें? (P17-0054)

अंदर कुछ भी नहीं है, लेकिन सब अनुभव अंदर से ही आते हैं — अनुभव करने वाला अंदर है, लेकिन अनुभव बाहर से आया है; स्वाद लेने वाला अंदर है, स्वाद बाहर से आया है। अंदर कोई अनुभव नहीं। शब्द, दृश्य, गंध, रस, स्पर्श — पांच इंद्रियों द्वारा जानकारी इकट्ठी होती है; मन का काम है आपको बताते रहना। बाहर से लेना बंद होगा तो वो अंदर से निकालने लगेगा — बस अपने आप को उसकी सफाई में लगा दो। उसका काम है आपको इंगित करना।

प्रश्न: गुरु जी, तन, मन और चेतना में क्या फर्क है? (P17-0055)

जिस दिन आपको परमात्मा का अनुभव हो जाएगा, उसी दिन से समझ आ जाएगा। कल्याण के लिए एक ही ज्ञान है — आत्मज्ञान, मतलब अपना ज्ञान, काया का ज्ञान नहीं।

प्रश्न: गुरु जी, परमहंस किसको कहते हैं? जैसे हंस उसे कहते हैं जो पानी और दूध को अलग कर दे, तो क्या परमहंस वो है जो ज्ञान और अज्ञान को अलग कर दे? (P17-0056)

जो ज्ञान और अज्ञान दोनों को समझ ले, और जिसमें उससे निकालने की क्षमता आ जाए। ज्ञान और अज्ञान को अलग करके साफ कर दे, साफ दिखा दे, साफ बता दे।

प्रश्न: गुरु जी, क्या मंत्र साधना से ईश्वर प्राप्ति होती है? (P17-0057)

दो तरह के मंत्र हैं — एक तंत्र-मंत्र और एक सात्विक मंत्र। तंत्र का मंत्र जो कामनाओं में किया जाता है, उससे नहीं पहुंच सकते; शाबर मंत्र से भी नहीं। एक मंत्र होता है उस परम ब्रह्म का — उसके लिए कोई भी नाम ले लो। जैसे वाल्मीकि जी "मरा मरा" लेकर ब्रह्म समान हो गए — मरा मरा कौन सा मंत्र है? लेकिन देने वाले की योग्यता परम स्थिति पर थी; गुरु उस योग्य था, बोला "यही मंत्र है, ले ले, कल्याण हो जाएगा"; उन्होंने भरोसे से लिया और बैठ गए, उसके बाद कुछ किया भी नहीं — गुरु से जो वादा किया था उसे निभाया, और उनको उपलब्धि हो गई। परम स्थिति का व्यक्ति एक कण भी उठाकर दे दे तो उससे भी कल्याण हो जाएगा — जब आप उस पर पूरी तरह चलोगे; लेकिन वो उसी को देता है जो उस लायक हो, साधारण लोगों को देता नहीं, उसे भीड़ नहीं चाहिए। वो कर क्या रहा है उससे मतलब नहीं, भाव क्या है — सारा प्रताप देने वाले का है, और लेने वाले का भी; लेने वाले के भाव तगड़े थे, जिसकी वजह से उसे मिला।

प्रश्न: गुरु जी, क्या जीवन का उद्देश्य सभी मनुष्यों के लिए एक ही है? (P17-0058)

हां। जैसे भोजन करते हो तो तरह-तरह के भोजन बनते हैं, लेकिन मतलब एक ही है — भूख का मिटना और पोषण। ऐसे हर मनुष्य का उद्देश्य आत्मिक कल्याण है; हर मनुष्य को आत्मिक कल्याण करना है।

प्रश्न: गुरु जी, क्या साधक सिद्धि में अटक जाता है? (P17-0059)

अगर लालच है तो अटक जाएगा; लालच नहीं है तो नहीं अटकेगा।

प्रश्न: गुरु जी, (परिवार में किसी को) पैरालिसिस की बीमारी है — क्या करें? (P17-0060)

उसका इलाज कराओ। और हो सके तो जिसको हुआ है, उसे साढ़े तीन से चार बजे के बीच — ब्रह्म मुहूर्त में — जो हवा चलती है, उसमें आधा घंटा घुमाओ; उससे राहत मिलती है, रोगियों के लिए बहुत सहायक है, स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक है। वो हवा हर जगह चलती ही चलती है — जैसे सूरज सुबह उगता ही उगता है।

प्रश्न: गुरुदेव, मुझे क्रोध बहुत आता है — लगता है खून कर दूं। समाज में कोई गलत होता है तो मुझे मारने का मन करता है। क्रोध से बाहर कैसे निकलें, क्रोध को कैसे समझें? (P17-0061)

जब हमारे तरीके से सामने वाला कार्य नहीं करता, तो हमें क्रोध आता है। तो "अपने तरीके से" की इच्छा का त्याग करो। जब अपने तरीके से चाहिए तो खुद कर लो — क्रोध नहीं आएगा। किसी पर निर्भर क्यों हो?

प्रश्न: गुरु जी, क्या हर व्यक्ति आत्मज्ञान और आत्मदर्शन का अधिकारी है? और संसार में रहते हुए हम अपने आप को क्यों नहीं देख पाते? (P17-0062)

अधिकारी तो सब हैं — मनुष्य जन्म का मूल उद्देश्य ही आत्मज्ञान को पाना और ईश्वर को समझना है, इसीलिए जन्म हुआ है। लेकिन 99.999% लोग प्रकृति में और इस दुनियावी झूठ-झमेले में फंसे हुए हैं; उनके बारे में कहना बेईमानी है, अपने से मतलब रखो — वो फंसने के लिए पैदा हुए, हम निकलने के लिए। जब तक आप इसमें लिप्त रहोगे, वो दिखेगा नहीं, हमेशा पर्दा ही पड़ा रहेगा। पता तो है कि मैं अलग हूं और ये अलग है, लेकिन उसमें रहकर ना आप उसे पूरी तरह देख पाओगे ना अपने आप को। जब उससे बाहर निकल जाओगे तब वो भी दिखेगा और अपने आप को भी देख लोगे। और निकालना अपने आप को खुद ही पड़ेगा, क्योंकि फंसाने वाला मैं ही हूं — अपने प्रयास से ही निकलना पड़ेगा।

प्रश्न: गुरु जी, बंधन से निकलने के लिए क्या छोड़ना पड़ेगा? (P17-0063)

फंसाने में कामनाएं थीं, अब निकालने में कामनाओं को छोड़ना है — बस यही है। बिना कामनाओं को छोड़े आप निकल नहीं सकते, कामनाएं ही बंधन हैं। अनेक पिंडों में, अनेक रूपों में, अनेक वस्तुओं में बंधन हो गया है और वह बंधन कामना का है। पहले कामनाएं छोड़नी पड़ेंगी, उसके बाद बंधन छुड़ा सकते हो — और इसके लिए आंतरिक रूप से पूरी तरह आपको तैयार होना पड़ेगा। बहुत लोगों को छुआ, अब एक बार अपने आप को छूकर देखो, एक बार आत्मदर्शन करके देखो।

प्रश्न: गुरु जी, हम दूसरों के दर्शन और भोग-भोजन के लिए इतने व्याकुल क्यों रहते हैं, और इससे कैसे निकलें? (P17-0064)

जो दूसरों के दर्शन के लिए हम व्याकुल हैं, काश आत्मदर्शन के लिए व्याकुल हो जाते। दूसरे के लिए इसलिए व्याकुल हैं कि वहां से शब्द, दृश्य, गंध, रस, स्पर्श — कोई कामना पूरी होती है; एक हुई तो व्याकुल, दो हुईं तो और बढ़ गया, पांचों में तो एकदम पागल। पांचों सुख या तो मां से मिलते हैं (स्तनपान में) या नर-मादा के मिलन में; चार भोजन में मिलते हैं। इसलिए सबसे ज्यादा हम भोग और भोजन के लिए व्याकुल हैं — इसी में जीवन लगा दिया, फिर भी ना भोजन की इच्छा पूरी हुई ना भोग की। इसे कभी पूरा नहीं कर सकते क्योंकि यह क्षणिक है: पेट भरने तक स्वाद अच्छा लगा, हार्मोन है तब तक भोग अच्छा लगा, ऊर्जा गई तो अच्छा नहीं लगता, फिर ऊर्जा आई तो फिर अच्छा लगने लगा — यही चक्र चल रहा है। इसे समझकर ही छोड़ सकते हो।

प्रश्न: गुरु जी, पशुओं को दोष क्यों नहीं लगता और मनुष्य को क्यों लगता है? (P17-0065)

मानव के अलावा पृथ्वी पर जितने भी जीव हैं, सबका भोग और भोजन का टाइम है — भूख लगेगी तो भोजन करेंगे और प्रजनन का प्राकृतिक समय आएगा तब संबंध करेंगे; वो प्राकृतिक जीते हैं, इसलिए पशुओं को दोष नहीं लगता। किसी महापुरुष या किताब ने आज तक नहीं कहा कि पशुओं को सुधारो, ये बेईमान हो गए हैं। मानव को कर्ता का अधिकार दिया गया है, उसके भोग-भोजन का कोई टाइम नहीं; अपनी कामना पूरी करने के लिए, भोग-भोजन और मान-सम्मान के लिए वह किसी भी हद तक गिर रहा है, बेईमानी में उतर गया है। आखिरी में हाथ में कुछ नहीं रहेगा, यह सबको पता है। वस्तुओं का उपयोग तो सब कर रहे हैं, बात यह है कि किस तरीके से — ईमानदारी से किया तो मुक्ति से मोक्ष तक जाओगे, बेईमानी से किया तो बंधन में जाओगे। बस इतना ही है।

प्रश्न: गुरु जी, सबको अलग-अलग धन, शरीर, रूप और बुद्धि का स्तर क्यों मिला है? (P17-0066)

आपके कर्म के हिसाब से सबको धन, शरीर, रूप-रंग, टैलेंट और बुद्धि का स्तर मिला है — इसीलिए सबका बुद्धि का स्तर अलग-अलग है। दुष्कर्म करोगे तो स्तर गिरेगा, सत्कर्म करोगे तो ऊपर उठेगा — सीधा-सादा सिद्धांत, सीधा-सादा लॉजिक है। लेकिन समझने के बाद भी हम वही कर रहे हैं जो नहीं करना चाहिए, और कहते हैं कुछ हो नहीं रहा। जिसके लिए किया उसमें बढ़ोतरी हुई — परिवार बढ़ा, घर, वैभव, प्रॉपर्टी सब बढ़ा दी, लेकिन आप घट गए, नीचे आ गए, क्योंकि समय उसमें दिया; अपने लिए समय कहां निकाला? शब्दों का ज्ञान ले लिया, उसमें जी नहीं रहे — जब तक सवाल हल ही नहीं करोगे, आगे कैसे बढ़ोगे?

प्रश्न: गुरु जी, लोग कहते हैं "बेईमानी के बिना कैसे चलेगा?" — क्या बेईमानी रखते हुए आत्मदर्शन या सत्य की खोज हो सकती है? (P17-0067)

लोग आकर कहते हैं मैं इतने साल से इन गुरु से जुड़ा हूं, और कहते हैं बेईमानी बिना कैसे चलेगा — तो उस गुरु ने आपको कैसे स्वीकार किया और आपने उसे कैसे, जब मूल ही नहीं छुड़ाया? यह अपने आप नहीं छूटेगा, आपने किया है तो आपको छोड़ना पड़ेगा; पूरी तरह ईमानदार होना पड़ेगा, बेईमानी का त्याग करना पड़ेगा। अपने आप को तब समझ पाएंगे जब निर्विकार होंगे, और विकार आते कहां से हैं? बेईमानी से। बेईमानी नहीं छोड़ी तो शब्दों का ज्ञान रहेगा और विकार और जमा होते जाएंगे। फिर तो यहां आना भी बेकार है, समय बर्बाद कर रहे हो — जाओ और दौलत, वैभव, रिश्ते बढ़ाओ। सत्य की खोज बेईमानी से नहीं हो सकती। मूल बात: कर्म के प्रति छल, कपट, चोरी, बेईमानी, चापलूसी, मक्कारी, धूर्तता, पाखंड — आठ में से एक भी मत करो, विकार नहीं आएंगे। यह नहीं करोगे तो साक्षात ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी आ जाएं, कुछ नहीं कर सकते।

प्रश्न: गुरु जी, अगर अज्ञानता में ही कोई शक्ति, ऊर्जा या पैसा मिल जाए तो क्या होता है? (P17-0068)

जब अज्ञानता में कोई भी ताकत आपको मिलेगी तो आप उससे अपना पतन ही करोगे — राक्षसों के पास भी भगवान आए तो उन्होंने मांगकर अपना पतन ही किया। एक बेवड़े को 100 रुपये मिल रहे हैं तो घर तक पहुंच रहा है, कोई 1000 दे दे तो घर भी नहीं पहुंचेगा, रास्ते में नाली में लेटेगा। एक व्यक्ति आया, बोला बहुत परेशान हूं, सेविंग नहीं होती — पूछा गुटका खाते हो? बोला हां। तो कहा और परेशान हो जाओ, गुटके का पैसा ना मिले, रोटी तक मिले, तो गुटका तो छूटेगा। मतलब, अगर आप अज्ञानता में हो, बेईमानी में हो, तो जितनी भी ऊर्जा मिलेगी उसका दुरुपयोग ही होगा; जब तक भावना शुद्ध नहीं होगी, सदुपयोग कर ही नहीं पाओगे।

प्रश्न: गुरु जी, अगर आत्मदर्शन की जरा सी भी इच्छा है तो यात्रा की शुरुआत कैसे करें? (P17-0069)

सर्वप्रथम कर्म के प्रति छल, कपट, चोरी, बेईमानी, चापलूसी, मक्कारी, धूर्तता, पाखंड — इन आठ में से एक भी मत करो। दिखावा छोड़ दो, बड़ा-छोटा बनने की इच्छा का त्याग करो, योग्यता से ज्यादा पाने की इच्छा का त्याग करो — अब यात्रा की शुरुआत होगी। ईमानदारी अपनाओ (ईमानदारी स्वाभाविक होती है, करनी नहीं पड़ती) और सत्कर्म में लग जाओ। इतना अपनाओगे तब शुरुआत होगी — अपने को समझने की नहीं, निर्विकार होने की। जैसे-जैसे निर्विकार होंगे, अपने करीब जा रहे हैं, धीरे-धीरे आपको अपने होने का एहसास होने लगेगा, और जब पूरी तरह निर्विकार हो जाएंगे तो आत्मदर्शन हो जाएगा, बात ही खत्म। यह नहीं अपनाएंगे तो कभी नहीं हो सकता।

प्रश्न: गुरु जी, क्या कोई गुरु आत्मदर्शन करवा सकता है? और अगर बात न बने तो गुरु बदलें या खुद को? (P17-0070)

कोई पैदा नहीं हुआ जो करवा दे — यह आपने किया है तो आपको छोड़ना पड़ेगा। किसी के बस में बस मार्ग बताना है, आत्मदर्शन करवाने का अधिकार किसी को नहीं दिया गया; इतने महापुरुष और भगवान आए, जिसने प्रयास किया उसकी सहायता की और उसकी उपलब्धि हुई। जैसे नर-मादा दोनों सही हों तब बच्चे का जन्म होता है — अब देख लो गड़बड़ी किसमें है, तुममें कि गुरु में। गुरु ठीक नहीं तो कोई और ढूंढो, तुम ठीक नहीं तो अपने आप को ठीक करो, और दोनों गड़बड़ हों तो कहीं मत जाओ, औरों को परेशान करोगे। गुरु शब्द है, शरीर नहीं — पूरे विश्व में पानी एक जगह से आता है, निमित्त अनेक हैं; जिस शब्द से आपका आत्मिक कल्याण हो वह शब्द ले लो। गुरु कोई व्यक्ति विशेष नहीं, गुरु एक स्थिति है, कहीं से भी मिल सकती है। नल कितना भी खटारा दिखे, एक बार पंप मारकर देखो, पानी आया तो ठीक, नहीं तो आगे जाओ।

प्रश्न: गुरु जी, आखिरी गुरु कौन है, और हम रूप और ब्रांड में क्यों फंस जाते हैं? (P17-0071)

नल नहीं मिले तो आखिरी में प्रकृति है — नदियों में पहुंच जाओ, वहां कोई रोकने वाला नहीं, शुद्ध जल है। आखिरी गुरु प्रकृति है, लेकिन शुरुआत में नहीं, जब खोजते-खोजते खोजने को कुछ नहीं बचेगा तब। प्रकृति कल्पवृक्ष की तरह है — जैसे-जैसे आप योग्य होते हो, जो चाहिए वह वस्तु या जीव आपके पास आने लगता है, बस रूप बदलता रहता है। हम रूप में फंस गए हैं — जरूरत नहीं देखते, ब्रांड देखते हैं; अब तो आदमी भी ब्रांडेड चाहिए: "ज्ञान बाद में देखेंगे, बताओ कितने लाखों अनुयायी हैं"। हर रूप के पीछे तत्व वही है — रोटी, पराठा, पूड़ी, पीछे वही है; रोज पराठा खाओगे तो बीमार हो जाओगे, रोज रोटी ही चलेगी। फंसाए आप हो, तो फंसाने की ताकत थी मतलब निकालने की ताकत भी है — समझकर कैसे भी अपने आप को निकालो।

प्रश्न: गुरु जी, कहते हैं महाभारत में कर्ण-अर्जुन युद्ध के समय श्रीकृष्ण अपना मुख अत्यंत मनमोहक बना लेते थे ताकि कर्ण पूरा प्रहार न कर सके — क्या यह सही है? क्या कर्ण ज्यादा ताकतवर था? (P17-0072)

नहीं, ऐसा कृष्ण कभी कर ही नहीं सकते। कृष्ण अर्जुन को ज्ञान कराए, वे संकल्प-विकल्प से परे थे, बस अपना काम कर रहे थे — यह तो छल हो गया, और उस स्थिति में पहुंचा हुआ कभी छल नहीं कर सकता। कर्ण ज्यादा ताकतवर भी नहीं था — अर्जुन के पास ब्रह्मास्त्र था, जैसे आज का परमाणु बम; एक बाण में पूरा युद्ध खत्म कर सकते थे, और वह किसी और के पास नहीं था। उनके पास भगवान शिव का पाशुपत अस्त्र भी था।

प्रश्न: गुरु जी, शिवलिंग और ज्योतिर्लिंग का क्या अर्थ है? क्या शिव और शंकर एक ही हैं? (P17-0073)

वह लिंग नहीं है, प्रकाश पुंज है — लिंग से, नर-मादा से वह परे है; लिंग तो शरीर में होता है, जो पहले नहीं था और बाद में नहीं रहेगा। ज्योति मतलब प्रकाश पुंज, और लिंग मतलब पृथ्वी से जुड़ा हुआ — इसलिए ज्योतिर्लिंग कहते हैं। जैसे दिया जलाओ तो उसका प्रकाश कहां से आ रहा है, उसका नाप कोई नहीं कर सकता — वैसे ही वह निराकार ब्रह्म है, उसका आदि-अंत कोई नहीं पा सका। 12 ज्योतिर्लिंगों में 11 जगह निराकार ब्रह्म है, और एक जगह (त्र्यंबकेश्वर) ब्रह्मा-विष्णु-महेश साकार हैं, जहां प्रकाश नहीं, गड्ढे जैसा है। शिव और शंकर अलग हैं — ब्रह्मा, विष्णु, महेश (शंकर) साकार हैं; शिव और परांबा निराकार ब्रह्म और निराकार शक्ति हैं, और ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पार्वती, सरस्वती, लक्ष्मी सब उसी से हैं। शंकर जी ने इतनी तपस्या की कि भेद ही खत्म हो गया — "मैं था तो हरि नहीं, हरि आए मैं नाहिं" — इसलिए शिव-शंकर कहे जाने लगे।

प्रश्न: गुरु जी, सारे ग्रंथों में राम, कृष्ण और देवता किसी न किसी से लड़ते ही रहे — लड़ाई से मुझे घबराहट होती है। भगवान क्यों लड़ते हैं, और लड़ाई कब रुकेगी?

(P17-0074)

लड़ाई दो तरह की होती है — एक स्वयं के लिए, एक समाज के लिए। उन्होंने अपने लिए नहीं, समाज के लिए, धर्म के लिए लड़ा। लड़ाई आज भी हो रही है और रुकेगी कैसे, क्योंकि तीन प्रवृत्तियां हैं — सात्विक, राजसी, तामसी; कब कौन जागृत हो जाए पता नहीं। लड़ाई तो अपने अंदर भी चल रही है — आज जितना फंसे हो, लड़-लड़कर फंसे हो, अंतरात्मा से लड़ाई हो रही है। यह तब तक होगी जब तक उस परम सत्ता से मिलना नहीं होगा, जब तक आत्मदर्शन नहीं होगा। लड़ाई तभी बंद होगी जब आप कहोगे "मुझे कुछ नहीं चाहिए" — लड़ने वाला ही खत्म हो गया। कुछ चाहिए तो लड़ाई तो होनी है।

प्रश्न: गुरु जी, गीता कहती है जो दिख रहा है सब भ्रम है — तो फिर हम इस भ्रम में फंसे क्यों हैं, और यह भ्रम कैसे टूटेगा? **(P17-0075)**

एक कागज पर चित्र है, आप उसे जला दीजिए — राख हो गया तो चित्र गया; लेकिन वह पहले भी नहीं था और बाद में भी नहीं रहेगा, यही बात समझनी है। हम तत्व में नहीं, रूप में फंसे हैं, इसलिए जो दिख रहा है वह भ्रम है — लेकिन इस भ्रम में हम भी तो फंसे हैं। रस्सी देखकर सर्प का भय हुआ, मतलब सर्प के बारे में उसे गहरी जानकारी दी गई है; जब तक वह खुद रस्सी तक जाएगा नहीं, उसका भ्रम नहीं टूटेगा — किसी और के जाने से नहीं टूटेगा। मैं लिप्त हुआ हूं तो उसकी कोई वजह है। पूरी जिंदगी भोग-भोजन से सुख लिया, सबसे ज्यादा समय उसी में दिया, और आज कह दो "भ्रम है, ब्रह्म है" — ऐसे नहीं चलेगा।

प्रश्न: गुरु जी, साधु, संत, महामंडलेश्वर — ये उपाधियां क्या हैं? साधु की असली परिभाषा क्या है, और भेष (भगवा वस्त्र) का क्या महत्व है? (P17-0076)

ये सब उपाधियां हैं। मूल यह है — "सा" से साधु, "धू" से धूल: जिसने अपनी धूल साफ कर दी, अपने आप को निर्विकार कर लिया, वह साधु से संत हो गया, चाहे कहीं भी हो — यही परिभाषा है। जैसे गृहस्थ में पति-पत्नी का दर्जा समाज देता है, लेकिन माता-पिता का दर्जा बच्चे के जन्म के बाद प्राकृतिक मिलता है, कोई करवा नहीं सकता। जो साधना करता है वह साधक है। भेष का महत्व इतना है कि उससे समाज समझ जाता है कि यह परमात्मा के लिए, आत्मज्ञान के लिए निकला है, किस संप्रदाय को मानता है — तो लोग इज्जत देते हैं, रहने-भोजन की व्यवस्था करते हैं, बताने की जरूरत नहीं पड़ती। अब उस सहायता का आप सदुपयोग कर रहे हो या दुरुपयोग, यह आपके ऊपर है।

प्रश्न: गुरु जी, साधक कितने तरह के होते हैं? और आत्मज्ञानी के पास जाने की पहचान क्या है? (P17-0077)

तीन तरह के साधक होते हैं — स्वभाव में निकलने वाले, अभाव में निकलने वाले और कुभाव में निकलने वाले। स्वभाव वाले बहुत कम हैं: जिसे कोई कमी नहीं थी — ना आर्थिक, ना शारीरिक, ना मानसिक — उसे संसार में दुख दिखा और वह स्वयं की खोज में, दुख से मुक्ति की खोज में निकला; वह सात्विक जिएगा, आत्मज्ञान होगा तो समाज को ज्ञान देगा, और जिन्हें कुछ नहीं चाहिए वे उसके पास जाते हैं। अभाव में निकला (धन की कमी थी) वह जाकर पैसा जमा करेगा, बड़ा बनेगा — राजसी लोग, जिन्हें माल चाहिए, यज्ञ-हवन वालों के पास जाते हैं। कुभाव में निकला (घर पर लोगों ने दबाया) वह तंत्र मार्ग, अघोर में जाकर रौब जमाएगा — जिन्हें किसी को सताना-डराना है वे उसके पास जाते हैं। राजसी-तामसी वाले आपको खूब इज्जत देंगे और आपके पास जो है उसकी सफाई करेंगे; सात्विक वाला आपकी सफाई करेगा, आपको कोई मान-सम्मान नहीं देगा। आत्मज्ञानी के यहां कभी दो व्यवस्थाएं नहीं पाओगे — वहां वीआईपी-आम सब एक जैसे बैठते हैं, आपका बैकग्राउंड काम नहीं करता; वह बस बताता है कि तुम्हारा कल्याण कैसे होगा, रुकना है तो रुको नहीं तो जाओ।

प्रश्न: गुरु जी, तीनों प्रवृत्तियां हमारे अंदर भी हैं — सात्विक को कैसे बढ़ाएं, और राजसी-तामसी लोगों से कैसे बचें? (P17-0078)

तीनों प्रवृत्तियां आपके अंदर भी हैं, अब आप किसे जागृत करते हो देख लो — सात्विक को जागृत करोगे तो आत्मज्ञान होगा; दिखावे वाली सेवा करोगे तो राजसी जागृत होगी; गुंडागर्दी करोगे, एरिया दबाकर रखोगे तो तामसी जागृत होगी। सात्विक बढ़ाने के लिए सत्कर्म करना पड़ेगा — बिना इच्छा-अपेक्षा की निष्काम सेवा; "कर्म ही पूजा है" मतलब निष्काम कर्म। राजसी-तामसी से बचना भी नहीं पड़ता — आप अपनी सात्विक ऊर्जा जागृत करो, वे आपके पास नहीं आएंगे; आते ही उनमें बदलाव होगा, बर्दाश्त नहीं कर पाएंगे, भाग जाएंगे। क्योंकि सात्विक ऊर्जा जैसे-जैसे जागृत होती है, आप परमात्मा के करीब होते जाते हो — और परमात्मा शुद्ध, निर्विकल्प, सबसे मजबूत है, उसी की सत्ता में सब जी रहे हैं। उस तक पहुंचने का सीधा मार्ग है सत्कर्म और ईमानदारी से जीवन। एक है पहुंचना, एक है बातें करना — दोनों अलग हैं।

प्रश्न: गुरु जी, कुछ भी करो तो आलोचना होती है — ऐसे में क्या करें? (P17-0079)

तीन प्रवृत्तियां हैं — मानव गढ़, देव गढ़, राक्षस गढ़ — इसलिए कुछ भी करोगे तो आलोचना होगी: राजसी वाला काम करोगे तो तामसी वाला आलोचना करेगा, तामसी वाला करोगे तो राजसी वाला। परोपकार करोगे तो बुराई नहीं होगी — कोई गिर गया, उसे उठाओगे तो उसमें कोई क्या आलोचना करेगा? आलोचना तब होती है जब आप राजसी या तामसी वाला काम करते हो। इसलिए मेरा कहना है — सेवा करो और सत्कर्म की तरफ बढ़ते रहो।

प्रश्न: गुरु जी, सेवा और सत्कर्म में क्या अंतर है? सत्कर्म का मौका कैसे मिलता है? (P17-0080)

सेवा से सत्कर्म तक आ जाओ — ऐसा मत छांट देना कि सेवा ना करो, सत्कर्म ही करो। सत्कर्म का मौका प्रकृति देती है, वह आपके बस में नहीं है; जब जरूरतमंद की सेवा में लगोगे तो धीरे-धीरे प्रकृति मौका देगी। जैसे आप भोजन लेकर गए, आदमी ज्यादा हो गए और आपके पास कम है — अब ऑप्शन बचा "मैं खाऊं कि इसको दूं" — उसी समय जो करोगे वह सत्कर्म है, बाकी सेवा है। या कम पड़ गया तो घर जाकर फिर ले आओ; आलस कर दिया तो सत्कर्म का मौका तुरंत चला जाएगा, वह रुकेगा नहीं, उसे देने वाले अनेक हैं। सेवा करते रहो, प्रकृति सत्कर्म का मौका देती रहेगी। और आत्मदर्शन हो गया तो आपके द्वारा जो भी होगा सत्कर्म ही होगा — उठना, बैठना, चलना सब — आप पाप-पुण्य से हट गए।

प्रश्न: गुरु जी, सेवा कितने तरह की होती है? और आत्मदर्शन के बाद व्यक्ति की व्यवस्था कौन करता है? (P17-0081)

सेवा तीन तरह से होती है — धन सेवा, तन सेवा और मानसिक सेवा। मानसिक सेवा पर तब पहुंचोगे जब आत्मदर्शन होगा; अभी तो मन कामनाओं में लगा है। आत्मदर्शन के बाद वह बस बैठे-बैठे समाज के लिए सोचता है, उसकी ऊर्जा, उसका वाइब्रेशन समाज में जाता है और काम होने लगता है, वह बोले या ना बोले — क्योंकि उसकी कोई कामना नहीं रही, उससे जो करवाना है प्रकृति करवाएगी, उसकी सारी व्यवस्था प्रकृति करेगी। जैसे कोई अधिकारी पद पर बैठ जाता है तो बस कहता है "मुझे यहां जाना है" और गाड़ी, पेट्रोल, सब व्यवस्था सिस्टम करता है, वह मना करे तो भी — क्योंकि अब वह संविधान के दायरे में पूरे देश का हो गया, उसका जीवन व्यक्तिगत नहीं रहा। लेकिन कुछ साल पहले वह खुद गाड़ी पकड़ता था; उस पद के लिए उसने मेहनत की, योग्य बना, तब हुआ। ऐसे ही आत्मदर्शन करने वाले की देखभाल प्रकृति करती है — वह निमित्त रहता है, पाप-पुण्य से परे; करवाओ तो ठीक, ना करवाओ तो ठीक।

प्रश्न: गुरु जी, कृष्ण भगवान कहते हैं "जब मैं प्रसन्न होता हूं तो बुद्धियोग देता हूं" — यह कौन सा बुद्धियोग है? इस लोक का या किसी और का? (P17-0082)

इसी लोक में देते हैं — इस भवसागर से पार कैसे हो जाओ, वैसी बुद्धि, वैसा ज्ञान देते हैं, जिसे सत्संग और विवेक कहा जाता है। लेकिन विवेक और समझने की क्षमता भी तभी मिलती है जब आप योग्य होते हो, जब आप प्रयास करते हो। जैसे आप बोझा उठाते-उठाते थक जाते हो तो बिना बुलाए कोई आता है "चलो मैं उठवा देता हूं" — लेकिन कब? जब आप उठा रहे थे और थक गए, तब।

प्रश्न: गुरु जी, सत्य का मार्ग इतना कठिन क्यों रहता है? (P17-0083)

कठिन आपने बना दिया है, बेईमानी कर-करके। कठिन नहीं है, यह तो बहुत आसान है, क्योंकि इसमें कुछ करना ही नहीं है — करना तो बेईमानी में पड़ता है।

प्रश्न: गुरु जी, आत्मदर्शन में हमें क्या दिखता है? (P17-0084)

करके देखो — करके देखोगे तभी जानोगे। गुड़ मीठा होता है या तीखा, यह कोई बिना खाए कैसे बताएगा? बिना खाए उसका स्वाद किसी को पता नहीं चल सकता, चाहे कोई भी आ जाए; उसे किताबों में नहीं लिखा जा सकता — बस "मीठा होता है, ऐसा होता है, वैसा होता है" कहा जा सकता है।

प्रश्न: गुरु जी, इष्ट देव, कुल देवता, ग्राम देवता — यह सब सुनते तो बहुत हैं, पर आज तक समझ नहीं आया। इनका क्या अर्थ है? (P17-0085)

अगर अपने आप को समझना है तब तो कुछ नहीं समझना है, समझने से भी मुक्त होना है; और अगर कुछ चाहिए तब इन्हें समझना है। इष्ट का चुनाव हम स्वयं करते हैं; कुल देवता का चुनाव हम नहीं करते — जिस कुल-खानदान से हैं, उस पीढ़ी ने किया है; ग्राम देवता का चुनाव गांव वालों ने और क्षेत्र देवता का पूरे एरिया वालों ने किया है। आत्मदर्शन वालों पर ये कोई नियम लागू नहीं होते, नियम से परे ही जाना है — आपने ईमानदारी अपना ली तो कौन सा नियम? जब कुछ नहीं चाहिए तो ना ईमानदारी रही ना बेईमानी। देवी-देवता "चाहिए" में काम करते हैं — जैसे समाज में बहुत दुकानें, व्यवस्थाएं हैं, जब चाहिए तब काम आती हैं; बस से जाना है तो ट्रेन की भीड़ से क्या मतलब। और हर जगह हमने अपने आप को पहले रखा है — "मेरी जरूरत पहले, तेरी बाद में"; मेरी सीट कन्फर्म हो गई तो कइयों को नहीं मिली इसका दुख नहीं — बात बस "मेरी" है, "मेरे" में सब जी रहे हैं।

प्रश्न: गुरु जी, आपने कहा सत्कर्म का मौका प्रकृति देती है — तो क्या उस मौके पर किए सत्कर्म से भी हमारे बंधन कटेंगे, या वह सेवा ही रहेगी? (P17-0086)

कटने में सहायता मिलेगी। और आप इस भाव से करोगे कि "मैं निष्काम सेवा करने जा रहा हूं", तो धीरे-धीरे अंतर उठेगा — "भावे हि विद्यते देवः", भाव में ईश्वर का वास है।

प्रश्न: गुरु जी, आत्म-साक्षात्कार कैसे करते हैं? (P17-0087)

आत्म-साक्षात्कार होता है, करना नहीं पड़ता — करने से अपने आप को मुक्त करा लो। आईने के सामने खड़े हो गए तो उससे थोड़ी कहना पड़ता है कि "मुझे दिखाओ" — बस खड़े होना है, फिर दिखने लगता है।

प्रश्न: गुरु जी, नौ द्वारों के अलावा दसवां द्वार भी सुना है — वह कैसे खुलेगा? (P17-0088)

दसवें द्वार में तो हाथ ही नहीं लगा सकते, जहां हाथ नहीं लगा सकते उसकी क्या बात करें। उसके लिए सीधा-सीधा सत्कर्म — सब दरवाजे खुल जाएंगे; दसवां, ग्यारहवां, जितने भी बुरे कर्मों से बंद हुए, सत्कर्म अपना लो, खुल जाएंगे। दरवाजा ना किसी और ने बंद किया, ना कोई और खोलेगा — मेरे कर्म से बंद हुए, मेरे कर्म से खुलेंगे। यह ऑटोमैटिक दरवाजा है, बस वहां जाकर खड़ा होना है। लेकिन आपने तो अपने आप को कामनाओं में, वस्तुओं में, रूप-रंग में, "यह भी मेरा, वह भी मेरा" में कई जगह खड़ा कर रखा है; बाहर से पूरी तरह छूट जाओगे तब वहीं जाकर खड़े होगे, और जैसे ही खड़े हुए, गेट खुला।

प्रश्न: गुरु जी, साधु भी बन जाते हैं तो उन्हें भी आनंद तो चाहिए — "चाहिए" तो हट ही नहीं रहा। कुछ नहीं चाहिए, तो आनंद क्यों चाहिए? (P17-0089)

कुछ नहीं चाहिए में जो होगा वह मिलेगा। आनंद भी चाहिए, तो आपके तरीके वाला, आपकी पसंद और चाहने के हिसाब से आनंद मिल जाएगा — वह आनंद और वो आनंद अलग है। एक सीमित आनंद है, एक असीमित। कुछ चाहिए — चाहे आनंद ही क्यों ना चाहिए — तो अपने दायरे में सीमित आनंद मिलेगा; और जब कुछ नहीं चाहिए, आनंद भी नहीं, तब असीमित आनंद मिलेगा।

प्रश्न: गुरु जी, जब हम किसी जीव को बिना कामना के भोजन कराते हैं तो अंदर से अच्छा लगता है, सुकून मिलता है — ऐसा क्यों होता है? (P17-0090)

क्योंकि उस समय चाह चली गई — सीमित वाला खत्म हुआ और असीमित में आ गए, तो एहसास होता है, सुकून मिलता है। इसीलिए कहा गया — सर्वप्रथम भूखे को भोजन, प्यासे को पानी; अन्नदान महादान। लेकिन कहां? जहां जरूरत है वहां; जहां जरूरत नहीं वहां नहीं — ऐसा ना हो कि आपने अनाज दिया और वह सड़ रहा है। धन, तन, ज्ञान — यह सेवा जरूरतमंद को देना, जहां उसकी जरूरत और उपयोग हो।

प्रश्न: गुरु जी, क्या दूसरों के कपड़े पहनने से उनकी ऊर्जा हम पर आती है? (P17-0091)

जैसा उसके प्रति भाव होता है। मित्र का कपड़ा पहना तो मित्र वाला भाव होगा, शत्रु का पहन लिया तो घुटन वाला भाव होगा। कपड़ा किसका पहने हो और उसके प्रति आपका क्या भाव है — यह मायने रखता है।

प्रश्न: गुरु जी, टेंशन बहुत होता है, क्या करें? (P17-0092)

टेंशन किस लिए हो रहा है, वो देख लो और उसके लिए काम करो। टेंशन कहीं से तो होता होगा — या तो कुछ मिल गया है और उसका उपयोग नहीं कर पा रहे, तब; या कुछ मिल नहीं पा रहा, तब।

प्रश्न: गुरु जी, मुझे संसार का कुछ नहीं चाहिए, बस परमात्मा चाहिए, उसके साथ रहना है — यह भाव कैसा है? (P17-0093)

परमात्मा किसलिए चाहिए? कुछ नहीं चाहिए तो उसे लेकर क्या करोगे? ज्यादातर लोग परमात्मा इसलिए मांगते हैं कि फिर करोड़ मांग लेंगे — तो सीधा बोलो ना "पैसे के लिए, माल के लिए परमात्मा चाहिए", घुमा-फिराकर क्यों? और साथ रहना चाहते हो — कभी सोचा वह आपके साथ रहना चाहता है? आपके अपने लोग आपके साथ रहकर थक गए, आप खुद अपने साथ रहने में घुटन महसूस करते हो, तो उस परमात्मा को एक घुटन वाले इंसान के साथ रखकर पीड़ा देना चाहते हो? अगर कहो "उसके जैसा होना चाहता हूं" तो मतलब शक्तिशाली बनना है। जब उसके अलावा दूसरा कुछ है ही नहीं, तो उसका साथ तो अभी भी है — बीच में पर्दा पड़ा है, और वह पर्दा उसकी तरफ से नहीं, हमने लगाया है; तो पर्दा उठा दो, गिरा दो, फाड़ दो या आग लगा दो, और कामना उससे करते हो कि "तू उठा"। जब मैं उस लायक हो जाऊंगा तो वह खुद आ जाएगा — आपके पास उसका पता नहीं, उसके पास सबका पता है, जब चाहे खोज लेगा।

प्रश्न: गुरु जी, क्या परमात्मा को कुछ करके पाया जा सकता है? उसे पाने का सही तरीका क्या है? (P17-0094)

जो कुछ करके पाया जा सकता है वह मुझसे छोटा होगा, बड़ा तो होगा नहीं — और छोटा लेकर क्या करोगे? सामर्थ्यवान होकर उसे कभी नहीं पाया जा सकता, क्योंकि उसका पता ही नहीं मालूम। अपने आप को ऐसा बनाओ कि जब उसे लगे तो वह खुद मिलने आ जाए — अपने आप को निर्विकार कराओ, कामनाओं से मुक्त कराओ, बेईमानी से मुक्त कराओ, राग-द्वेष, मोह, आसक्ति, इच्छा-अपेक्षा, "मेरा" और कर्ता के भाव से मुक्त कराओ। यह ना सही है ना गलत, बस यही तरीका है — पहला और आखिरी तरीका, सीधा और सरल; और जितने तरीके हैं वे बस आपको घुमाते रहेंगे।

प्रश्न: गुरु जी, क्या जितना जानते हैं वो सब भूल जाएं, सब छोड़ दें? (P17-0095)

भूल कैसे जाओगे? और छोड़ भी मत दो, क्योंकि छोड़ने में भी अहम भाव आ जाएगा। छोड़ो भी मत, पकड़ो भी मत — छूट जाए। "कुछ नहीं चाहिए" — यह भाव बनाओगे तो सब छूटता जाएगा।

प्रश्न: गुरु जी, प्रभु से मिलने की इतनी कामना तो रखनी ही पड़ेगी ना? (P17-0096)

ठीक है, लेकिन प्रभु की कामना के बाद उस योग्य तो बनना पड़ेगा। जैसे वस्तु की कामना करते हो तो पीछे पैसा चाहिए — पैसा है तो वस्तु ले आओगे, या फोन करोगे तो घर पर आ जाएगी; पैसा नहीं है तो जिंदगी भर दुकान के सामने खड़े रहोगे, नहीं मिलेगी। वैसे ही प्रभु चाहिए तो देख लो वह कैसे मिलेगा — पवित्र होकर। अपने आप को इतना पवित्र बना लो कि वह आपके पास आने के लिए सब काम छोड़कर आए। वह नहीं आ रहा तो अपने आप से पूछ लो — मैं पवित्र हूं या नहीं — जवाब मिल जाएगा। और पवित्र, निर्विकार होना ईमानदारी से जीवन जीते हुए सत्कर्म करके होता है — यह सबसे सीधा-सादा सिद्धांत है।

प्रश्न: गुरु जी, सबको प्रभु ही चाहिए — किसी को माल के लिए, किसी को मोक्ष के लिए। तो प्रभु सबको मोक्ष क्यों नहीं दे देता? प्रभु है क्या? (P17-0097)

प्रभु के बस में होता तो सबको मोक्ष दे देता — यह सब प्रभु के बस में नहीं है। प्रभु कर्ता से परे है और आप कर्ता में हो; वह आपको ना छुड़ा सकता है ना पकड़ा सकता है। प्रभु वही है जो ना कुछ लेता है ना देता है; जो कुछ लेता और देता है वह प्रभु नहीं, वह तुम जैसा ही है — कभी आप देने वाले की जगह खड़े होते हो, कभी लेने वाले की। मालिक नौकर को पेमेंट देता है, पर नौकर कई महीने उसे सेवा देता रहा — तो मालिक ही नौकर है, नौकर ही मालिक। जब नौकर और मालिक दोनों खत्म हो गए, द्वैत नहीं रहा, तब बात बनी। और यह आप ही के हाथ में है — तुम ही कर्ता, तुम ही धर्ता — तो अब विलंब क्यों? पहले भ्रम था कि कोई करवा देगा, अब सारा भेद खुल गया।

प्रश्न: गुरु जी, हम प्रभु को खोज-खोजकर थक गए हैं, वह मिलता क्यों नहीं? (P17-0098)

बिना पते के उसे खोजे चले जा रहे हो — उसका पता किसी को मालूम नहीं। किसी से घर पूछो तो वह पूछेगा कौन आदमी, क्या नाम, कहां रहता है — सारी डिटेल दोगे तभी बताएगा। आपके पास उसका पता ही नहीं, और अपना पता भी खो चुके हो — कई जगह पते बना दिए, कभी इधर कभी उधर भाग रहे हो, खुद एक पते पर नहीं हो। पहले खुद लापता हो जाओ, तब लापता वाले को खोजो। समझकर आगे बढ़ो, प्रभु आपको खोज लेगा, क्योंकि उसके पास सबका पता है। आत्मदर्शन करोगे तो उसका पता आपके अंदर है — एक ही जगह, आत्म में, सत्य में; और आप "मेरा" में, वस्तुओं में, आसक्तियों में, कामनाओं में खोज रहे हो, कभी सच कभी झूठ में जी रहे हो।

प्रश्न: गुरु जी, अंतर में कैसे उतरें? (P17-0099)

बस बाहर से अपने आप को छुड़ा लो, उतर जाओगे — उतरना थोड़ी पड़ेगा, कोई ऑप्शन ही नहीं रहेगा। बाहर कहीं-कहीं उतरना बंद कर दो, क्योंकि इस जगत में जो भी है परिवर्तनशील है; अपने आप को छुड़ा लो, सीधी-सिंपल बात है और आप ही के हाथ में है। प्रयास करोगे तो कोई सहायता करेगा — बोझा उठवा सकता है, लेकिन ढोना खुद पड़ेगा; गठरी आपने बांधी है, तो ढोएगा कौन? नहीं तो जन्म-जन्म भोग-भोजन में घूमते रहो। स्व में होकर जियो, जीवंत होकर जियो — यह बहुत आसान है, किसी से प्रार्थना भी नहीं करनी, बस उम्मीद से मुक्त करा लो। मेरे बस में होता तो अब तक कितनों को करवा देता — यह अधिकार किसी को नहीं दिया गया, आप ही को दिया गया है; कोई आंतरिक ऊर्जा से, ज्ञान से, सत्संग से सहयोग कर सकता है, लेकिन जब आप प्रयास करोगे तब।

प्रश्न: गुरु जी, महर्षि पतंजलि का योगसूत्र "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" सब योगी-साधु पढ़ते हैं, फिर भी समझने में चूक क्यों हो जाती है? इसका मूल क्या है? (P17-0100)

योग मतलब खुद का और परमात्मा का मिलन — अपने चित्त की वृत्तियों को बंद कर देना, निरोध कर देना। एक ही सूत्र की अलग-अलग व्याख्याएं हैं, फिर भी मूल को कोई पकड़ नहीं पाता — सब योगा-योगा करते रहते हैं। जो आत्मा-परमात्मा के मिलन वाली इस बात को पकड़ लेता है, उसका बेड़ा पार है। मेरा तो कहना है — "कुछ नहीं" में आ जाओ, इतना भाव बना लो, सब पकड़ लिया, कोई श्लोक नहीं छूटा। एक छोटे से वाक्य "कुछ नहीं चाहिए" में सारे श्लोक आ गए — कितने श्लोक पकड़ोगे? इस भाव को प्रबल कर लो, सारा झंझट, सारा खेल खत्म; ना शुद्धि रही ना अशुद्धि। कुछ करके संसार की वस्तुएं, सुख-दुख मिलते हैं; और वो कुछ ना करने में मिलता है — इंद्रियां अपना काम कर रही हैं, आंख देख रही है, कान सुन रहा है, मुझे तो कुछ नहीं चाहिए।

प्रश्न: गुरु जी, जो हो रहा है उसे हम स्वीकार क्यों नहीं कर पाते? क्या सब पहले से तय है? (P17-0101)

हमारे करने से इस दुनिया में कुछ नहीं होता, ऐसा लगता है कि हम कर रहे हैं, लेकिन होता वही है जो होना है — कुछ समय पहले मैं नहीं था, कुछ समय बाद नहीं रहूंगा; जो विधि के विधान में लिखा है वही होता है। हम फिक्स करने में फंस गए हैं, और जो एक्चुअली हो रहा है उसे स्वीकार नहीं करते — बस यही तकलीफ है। जब तक कुछ बनना है तब तक स्वीकार हो ही नहीं सकता; जब कुछ नहीं बनना, तब स्वीकार होगा — करना नहीं पड़ेगा, हो जाएगा। प्रभु की सत्ता, प्रभु का इंतजाम स्वीकार करना पड़ेगा। कुछ चाहिए, कुछ बनना है, तो कितना भी करोगे स्वीकार होगा नहीं, और जबरदस्ती स्वीकार करोगे तो उसमें अहम भाव होगा।

प्रश्न: गुरु जी, गलती मानना और सच्ची माफी मांगना कैसा होना चाहिए? "सॉरी बोल दिया ना" कहना क्या सही है? (P17-0102)

कोई कहता है "चलो, मैंने मान लिया" — उसने गलती नहीं मानी, गलती मानकर अपने अहम भाव को खड़ा किया कि देखो मैं कितना महान हूं। सच में गलती मानता तो तब तक माफी मांगता जब तक सामने वाला माफ ना कर दे। मैंने इसे प्रैक्टिकल किया — साधारण, फटे कपड़ों में रास्ते में चलता था, किसी का धक्का लग जाता और वह "सॉरी" बोलता, तो मैं कहता "सॉरी से काम नहीं चलेगा"; वह कहता "सॉरी बोला ना!" — मैं समझ जाता उसने दिल से नहीं, फॉर्मेलिटी में बोला था, और हंसते हुए निकल जाता। जो सच में बोलता, वह फिर कहता "भाई गलती हो गई", और सरल से सरल होता जाता। ऐसे ही पांव छूना भी अक्सर फॉर्मेलिटी है, महानता खड़ी करना है। "कुछ नहीं चाहिए" में यह बात ही खत्म हो जाती है।

प्रश्न: गुरु जी, भगवान को पाना इतना सीधा-सरल है, तो हमने इसे इतना जटिल क्यों बना दिया? (P17-0103)

जो जटिल था — व्यवस्थाएं जुटाना — उसे हमने बेईमानी कर-करके, झूठ बोल-बोलकर सरल बना दिया; और जो सरल था उसे कामना ने जटिल बना दिया। जो जटिल था उसे सरल, और जो सरल था उसे जटिल बना दिया। पहले के पूर्वज व्यवस्थाएं नहीं देखते थे, सीधा कह देते थे — बाहर मत भटको, अपने साथ रहो; व्यवस्थाएं बढ़ेंगी तो फंस जाओगे।

प्रश्न: गुरु जी, दुर्गा जी कौन हैं, काली जी कौन हैं? इन्हें कैसे समझें? (P17-0104)

वे "कौन है" से परे हैं; "कौन है" में संसार आता है जो परिवर्तनशील है। इन्हें समझने के लिए "कौन है" को पार करना पड़ेगा — जानकारी तो मिल सकती है, लेकिन समझ जानकारी से अलग है। जैसे मिलावट अक्षर पढ़ने के लिए पहले क-ख सीखना पड़ता है। ब्रह्म से ही जगत है, आत्मा है, आदि शक्तियां हैं, देवी-देवता हैं — तो इन्हें तभी समझ पाओगे जब अपने आप को समझोगे, आत्मदर्शन करोगे। जिसका जन्म आपके द्वारा हुआ, अपने बच्चों तक को तो आज तक समझ नहीं पाए — कंधे पर बिठाकर पाला, क्या सोचा था कि 50 साल का होकर झूठ बोलेगा, दारू पिएगा? तो दुर्गा-काली को क्या समझोगे? आत्मदर्शन से पहले जो भी समझ रहे हो, वह सिर्फ जानकारी है। इसलिए बुद्धिमानी यही है कि मूल पर काम करो, आत्मदर्शन कर लो, सब समझ में आ जाएगा।

प्रश्न: गुरु जी, आईने में अपना चेहरा तो शरीर का दर्शन है — असली आत्मदर्शन कैसे हो, उसका सरल मार्ग बताइए। इसमें गुरु की क्या भूमिका है? (P17-0105)

गुरु दर्पण है, गुरु शब्द है — तो शब्दों को लेकर दर्शन कर लो। दर्पण में दर्पण नहीं दिखता, उसमें तुम ही दिखते हो; इसलिए गुरु को नहीं देख पाओगे, गुरु में अपने आप को ही देखो — वह तो रहा ही नहीं, देखने के लिए बचा ही नहीं। गुरु वही होता है जो आपसे आपका मिलना करा दे — "मुझको मुझी से मिला दे"।

प्रश्न: गुरु जी, अगर हम यह भेद हटाने में सक्षम होते तो कब का हट गया होता — अब तो आपकी शरण, आपका सहारा चाहिए। (P17-0106)

भेद बनाने में तो सक्षम तुम ही थे — बनाने में तो हो गए। पूर्ण रूप से भेद हटाने लगोगे तो लोग सहारा देने लगेंगे, वह खुद अनेकों को निमित्त बना देगा — तुम तैयार तो हो जाओ। ना तुम, ना मैं — सिर्फ वो।

प्रश्न: गुरु जी, संसार के लोगों से इतनी मार खा चुका हूं कि अब किसी में रस नहीं रहा। सारी दुनिया बेईमान लगती है — टीवी खोलो तो झगड़े, पॉलिटिक्स, भक्ति चैनलों पर भी कुंडली-पैसे का धंधा। क्या करूं? (P17-0107)

सारे के सारे अलग-अलग तरीकों से एक-दूसरे को लूटने में लगे हैं — देखना यह है कि हम किसमें लगे हैं, हम भी तो कहीं लगे हैं। बस यह देखना है कि मैंने दूसरे को बेईमानी से नहीं लूटा, चाहे जैसे भी। अपने को किसी से कहना नहीं है, अपने को देख लेना है — मैं कहां लगा हूं और कहां लग जाऊं।

प्रश्न: गुरु जी, हमारा भी भक्ति करने का बहुत मन होता है, लेकिन परिवार है — क्या करें? (P17-0108)

आपके हाथ में है, कर लो। परिवार है तो उससे क्या हुआ — परिवार के साथ भक्ति करो। परिवार परिवार है, आप आप हो; खाना-पीना सब तो करते हो ना, भक्ति भी करो। भक्ति का मतलब परिवार छोड़ना थोड़ी है — भक्ति का मतलब अपने आप को निर्विकार कराना, कामनाओं से मुक्त कराना, छल, कपट, चोरी, बेईमानी, चापलूसी, मक्कारी, धूर्तता, पाखंड से मुक्त कराना। इसके लिए भक्ति की जाती है — इसमें क्या है, चाहे जहां भी रहो, करो।

प्रश्न: गुरु जी, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश — ये पांच स्थूल तत्व, और मन, बुद्धि, अहंकार — कोई कहता है ये आठों निकृष्ट हैं। क्या भगवान ने निकृष्ट चीजें बनाईं? (P17-0109)

भगवान ने निकृष्ट नहीं बनाई — हम इनका उपयोग कैसे कर रहे हैं, यह मायने रखता है। निकृष्ट होता तो राम समुद्र के सामने क्रोध का उपयोग क्यों करते? पानी शुद्ध है, शराब में मिलाकर पीते हो तो मिलाया किसने? गटर गंदा हुआ तो गंदा किसने किया? चाकू रसोई में सबको भोजन बनाकर खिलवाता है, क्रिमिनल के हाथ में किसी को मारता है, डॉक्टर उसी से किसी को बचाता है — गड़बड़ी चाकू में नहीं, चलाने वाले में है। परमात्मा शुद्ध है, शुद्ध से शुद्ध ही बनेगा; अशुद्धि की मिलावट हमने अपनी कामनाओं में, कुछ बनने में कर दी। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह तो शरीर का स्वभाव है, प्राकृतिक है — सही-गलत हमारे उपयोग के तरीके में है, दुरुपयोग करते हो या सदुपयोग।

प्रश्न: गुरु जी, अब तक माला-जप, ध्यान सब किया, ऋषिकेश, बनारस, अयोध्या, द्वारका, उज्जैन सब तीर्थ और आश्रम घूमे, पर मन नहीं लगा। अब क्या करना है? (P17-0110)

करना कुछ नहीं है — बस जीना है। ईमानदारी से जीना है, और ईमानदारी से जीते हुए सत्कर्म करना है — सीधी सी बात है। ईमानदारी और सत्कर्म, बस यही मूल है; वो खुद मिलने आएगा। जिस लायक आप हो, वह आपको मिल रहा है। जो मिला है उसी में बांटो, सत्कर्म फैलाओ — करोगे तो फैलेगा।

प्रश्न: गुरु जी, यहां आकर जो आनंद मिला है, वह छिन ना जाए — जहां भी रहें, किस बात का ध्यान रखें? (P17-0111)

जहां भी रहना, अपना ख्याल रखना — पहले अपने आप को रखना, बाद में कुछ और। कुछ के लिए अपने आप को मत खोना, मत गिराना। आपका आपसे मिलना हुआ है, इसे संभालकर रखना। कुछ मिला तो भी ठीक, नहीं मिला तो भी ठीक — कम से कम मैं तो हूं। जैसे ही आपने कुछ और को पहले रखा, आप गए — जाने में टाइम नहीं लगता, आने में बहुत टाइम लगता है। ईमानदारी से जीवन जीना, सत्कर्म में लगे रहना। और बेमतलब की हंसी में आप कितने सुंदर हो — वह सुंदरता आपके स्वयं की है, मतलब की होती तो जाती भी।

प्रश्न: गुरु जी, ईश्वर से कोई शिकायत नहीं, लेकिन संसार से नहीं बनती — ऐसा लगता है दुनिया पीछे पड़ी है। ऐसा क्यों? (P17-0112)

दुनिया तब तक पीछे है जब तक आपको अपने तरीके से कुछ चाहिए। कुछ नहीं चाहिए तो दुनिया वाले तुम्हें छोड़ देंगे। कोई किसी के पीछे नहीं पड़ा है — सब अपनी-अपनी जरूरत में, अपनी-अपनी कामनाओं में लगे हैं। ऐसा लगता है कि मेरे पीछे कोई पड़ा है, नहीं — सब कामनाओं का खेल है।

प्रश्न: गुरु जी, भगवान हमारे जीवन में काम करते हैं या हम भगवान की योजना में काम करते हैं? (P17-0113)

आए तो उसकी योजना में काम करने के लिए थे, पर अपनी योजना बनाने लगे। उसके जगत में हमने एक अपना जगत बना लिया और उसमें फंस गए — उसकी योजना से हट गए, अपनी बना ली, और जीवन अशांत हो गया; इसीलिए सबका अपना-अपना जगत, अपना दायरा है। कहा "तेरी दुनिया में बड़ी अशांति है, हम उसमें एक दुनिया बनाएंगे जिसमें सिर्फ प्रेम होगा" — और प्रेम का आश्वासन देते-देते अपनी वासना की पूर्ति के लिए इतना जाल बुन दिया कि अब निकलना चाहो तो लोग नहीं छोड़ते: "तुमने फंसाया, भरपाई करके जाओ" — वह भरपाई करनी ही पड़ेगी। अपने तरीके में रहोगे तो उस जगत में रहोगे; अपने तरीके से, "कुछ चाहिए" से मुक्त हुए तो उसके जगत में आओगे; और "कुछ नहीं चाहिए" से भी मुक्त हो गए तो बात ही खत्म — फिर वह कहेगा, संसार उनके लिए है जो कुछ करें, तू मेरे पास आ।

प्रश्न: गुरु जी, क्या संसार जैसा है वैसा ही स्वीकार करना है और भगवान को मानना है? (P17-0114)

संसार जैसा था, वैसा हमने रहने कहां दिया — हमने तो अपने आप को पूरी तरह बदल दिया। अब मेरे पास दो ऑप्शन हैं — उचित और अनुचित, एक अच्छा एक बुरा। उचित को पकड़ो और निकल लो; बेईमानी हमने पकड़ ली है, ईमानदारी पकड़कर निकल जाओ।

प्रश्न: गुरु जी, अब तक भटकाव हुआ, अब आगे ना हो — आप ऐसा कर दीजिए कि आना-जाना ही बंद हो जाए, हमें बंधन में ले लीजिए। (P17-0115)

अब तक गए क्यों? जाना आपके बस में था, तो रुकना भी आपके बस में था। आने वाले भी आप, जाने वाले भी आप — कोई किसी को नहीं बुला रहा, कोई किसी को नहीं भेज रहा। अगर मैं कर सकता तो पहली बार ही नहीं जाने देता। हम किसी को रोक नहीं सकते, हम तुम्हारी स्वतंत्रता छीनना नहीं चाहते — स्वतंत्रता का अधिकार आपको दिया गया है।

प्रश्न: गुरु जी, घर-परिवार से निकल नहीं पा रहा, कुछ ना कुछ बाधा आ ही जाती है — क्या इंसान का समय भी नियति के अधीन है? (P17-0116)

नियति बनाने वाले आप, बिगाड़ने वाले आप — तुम ही कर्ता हो; जो करते हो वही बनते चले जाते हो। गलती यही हो रही है कि बनना कुछ और चाह रहे हो और कर कुछ और रहे हो — करो तो बन जाओगे। यही राग-द्वेष है।

प्रश्न: गुरु जी, योग किसे कहते हैं? ज्ञान, भक्ति, योग, ध्यान — किस मार्ग से जाएं? (P17-0117)

योग का मतलब सीधा है — संसार में जो कुछ है उसका सदुपयोग करके स्वयं को साधना। "एक साधे सब सधे" — सबके द्वारा स्वयं को साध लेना है। चाहे योग द्वारा जाओ, चाहे भक्ति, ध्यान या ज्ञान द्वारा — किसी भी द्वारा जाओगे, ज्ञान तो सर्वप्रथम लगेगा: शुरुआत में ज्ञान, आखिरी में ज्ञान। चारों में से कोई एक अपनाकर उस तक पहुंचा जा सकता है। और प्रेम इन चारों में नहीं है — वह तब घटित होता है जब आप "कुछ नहीं" में आते हो।

प्रश्न: गुरु जी, प्रेम का क्या स्थान है? राधा जी और उद्धव जी के प्रसंग से क्या समझें? (P17-0118)

राधा जी और कृष्ण जी के बीच ना कोई भक्ति थी ना कोई ज्ञान — बीच में कुछ नहीं था, बस प्रेम था। कृष्ण के जाने पर उद्धव जी राधा जी को ज्ञान सिखाने गए थे, और सारा पोथी-पत्रा नदी में बहाकर चले आए। मूल को पकड़िए — जिनके दर्शन के लिए लोग तरसते हैं, उनसे राधा जी सीधा बात करती थीं, क्योंकि उनमें प्रेम था; वे प्रेम में भक्ति, ज्ञान सब कुछ डुबा देती थीं — प्रेम के अंदर सब निमित्त बनते हैं। उद्धव जी भी साधारण नहीं थे, रटे-रटाए ज्ञानी नहीं, परम ज्ञानी थे; उनमें भी प्रेम था तभी प्रेम को समझ पाए — ज्ञान समझाने गए और प्रेम समझकर लौट आए, देखा कि दोनों का प्रेम एक ही है। प्रेम घटित होगा तभी आनंद घटित होगा, आनंद घटित होगा तभी आत्मज्ञान होगा, उसके पहले हो ही नहीं सकता।

प्रश्न: गुरु जी, कहते हैं आमदनी का 10% दान दो तो हजार गुना लौटकर आएगा — इस 10% के चक्कर में पैसा बेकार कामों में चला जाता है। सही दान कैसे करें?

(P17-0119)

लौटकर आएगा या नहीं, पता नहीं; पर हजार के चक्कर में लोग दे देते हैं और वह सही जगह खर्च नहीं होता। जरूरतमंद को देने को कहा गया है — दो तरह की जमीन होती है, बंजर और उपजाऊ; बंजर में बीज बोओगे तो नहीं उगेगा। गृहस्थ हो तो वहां दान करो जहां उसका सदुपयोग हो — भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, कपड़ा, मकान, दवा। देने के बाद देखो भी कि उपयोग क्या हो रहा है, जैसे फसल बोकर बार-बार देखने जाते हो; सदुपयोग हो रहा है तो दो, नहीं तो मत दो। कोई छुरा मांगे तो पूछो — रसोई के लिए, डॉक्टर बचाने के लिए, या क्रिमिनल मारने के लिए? बिना आवरण देखे जरूरतमंद को दो, और सत्कर्म के लिए खोजना पड़ेगा कि भूखा कौन है। हम तो वहां दान देते हैं जहां मेरा मान बढ़े, नाम चिल्ला-चिल्लाकर — जबकि कहा गया "दाहिना दे तो बायां ना जाने"। घर के बगल में कोई भूखा है, ठंड में कांप रहा है, और आप 100 किलोमीटर जाकर फोटो खिंचाने के लिए स्वेटर बांट रहे हो — यह दान नहीं हुआ। विपत्ति में बगल वाला आएगा, 100 किलोमीटर वाला नहीं; पहले मानवता जगाओ, अपने आसपास से शुरुआत करो।

प्रश्न: गुरु जी, "सब तीरथ बार-बार, गंगासागर एक बार" — इसका सही अर्थ क्या है? **(P17-0120)**

लोग इसका अर्थ निकालते हैं कि कोई तीर्थ मत करो, बस गंगासागर कर लो — लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है। मतलब है — सब तीर्थ बार-बार करते रहो, और गंगासागर आखिरी में एक बार करना, जब राग-द्वेष से मुक्त हो जाओगे; क्योंकि वहां तुम मिट जाओगे, तुम तुम नहीं रहोगे। तब तक घूमते रहो जब तक अहम भाव खत्म ना हो जाए। लिखा कुछ और गया, हमने अपने तरीके से समझ लिया।

प्रश्न: गुरु जी, कोई मार्ग बताए या मदद करे तो धन्यवाद देना क्यों जरूरी है?

(P17-0121)

मार्ग पूछने का, पानी मांगने का टाइम होता है, लेकिन धन्यवाद देने का टाइम नहीं होता। धन्यवाद देने से अहम भाव गिरता है, और नहीं देते तो अहम भाव खड़ा हो जाता है। इसलिए कोई भी आपको मार्ग बताए, सेवा करे, हेल्प करे — बिना आवरण देखे उसे धन्यवाद दो। इससे आपका अहम भाव गिरेगा, आपमें मानवता जागेगी, सरलता आएगी; उस व्यक्ति को प्रेरणा मिलेगी और वह औरों को भी मार्ग बताएगा, और उसके रोम-रोम से आपके लिए आशीर्वाद निकलेगा। कहीं भी रहो, धन्यवाद देना ही चाहिए।

प्रश्न: गुरु जी, एक आत्मज्ञानी दूसरे आत्मज्ञानी को कैसे पहचान सकता है?

(P17-0122)

उसे देखते ही पहचान जाएगा — देखने में भी पहचान पाएगा, महसूस भी कर पाएगा, और बातचीत करने पर तो स्वयं आत्मा बता देगी कि यह आत्मज्ञानी है; बातचीत के बाद भी समझ में आ जाएगा।

प्रश्न: गुरु जी, "जीवित ही मर जाए, उलट आप में समाए" — क्या यह वही स्थिति होती है? (P17-0123)

जीवित ही मर जाने का मतलब है हमारी इच्छा और अपेक्षा का मर जाना। इच्छा-अपेक्षा ही जन्म-मृत्यु है। जिंदा कौन है? इच्छा और अपेक्षा — इन्हीं के कारण हम इस संसार में हैं। अगर हम इच्छा-अपेक्षा से मुक्त हो गए तो अपने पिंड में, अपने आप में हो गए। अपनी इच्छा-अपेक्षा से मुक्त हो जाना ही (जीते जी) मरना है।

प्रश्न: गुरु जी, कई संत जानबूझकर अपने आप को ऐसी स्थिति में डालते हैं कि लोग उन पर क्रोध करें, ताकि देखें कि उनका अपना व्यवहार क्या रहता है — क्या ऐसा होता है? (P17-0124)

ऐसा उनका भाव नहीं रहता। संत का भाव बस इतना रहता है कि लोग हमारी बात को समझ जाएं — बात खत्म। वे आजमाने से मुक्त हो चुके हैं, उन्हें अपने आप को आजमाने की क्या जरूरत है?

प्रश्न: गुरु जी, क्या संत भगवान किसी भी प्रकार का नाम या दीक्षा नहीं देते?
(P17-0125)

हां, वे सीधा ज्ञान देते हैं। जरूरत नहीं पड़ती कि आपको कोई मंत्र दे या दीक्षा दे। आपको सीधा ज्ञान देते हैं — ज्ञान लेकर अपना आत्मिक कल्याण करो।

प्रश्न: गुरु जी, आत्मज्ञान होने के बाद व्यक्ति स्व में स्थित हो जाता है — क्या साधक को इस स्थिति की झलकियां आत्मचिंतन के दौरान महसूस होने लगती हैं?
(P17-0126)

हां। अगर किसी जीवंत गुरु के सानिध्य में रहकर — जीवंत गुरु का अर्थ है जिसकी उपलब्धि हो गई है — आत्मिक चिंतन करता है, तो स्व की स्थिति की झलक मिलती है।

प्रश्न: गुरु जी, क्या घर-संसार का दायित्व निभाते हुए भी इस (आत्मज्ञान की) स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है? **(P17-0127)**

एकदम प्राप्त किया जा सकता है। इसमें बात यह है कि जितना हमने बेईमानी से प्राप्त किया है, अब उसकी भरपाई ईमानदारी और सत्कर्म के द्वारा करनी पड़ेगी। और पूरी तरह ईमानदारी और सत्कर्म भरा जीवन जीना होगा — तभी उपलब्धि हो सकती है।

प्रश्न: गुरु जी, अज्ञान मिटाने के लिए ज्ञान की जरूरत होती है, और जब सत्य का बोध हो जाता है तब ज्ञान की गठरी भी त्यागनी पड़ती है — क्या यह सही है?
(P17-0128)

बोध ऐसे होता है जैसे उजाला आया और अंधेरा गया। ऐसा नहीं कि पहले उजाला आए और उसके बाद अंधेरा जाए — जैसे-जैसे उजाला आ रहा है, वैसे-वैसे अंधेरा जा रहा है; उजाले का आगमन ही अंधेरे का जाना है। तो बोध के समय बाहर का ज्ञान, बाहर की जानकारी — उससे व्यक्ति मुक्त हो जाता है, तभी तो आत्मा का बोध होता है।

प्रश्न: गुरु जी, आत्मज्ञान कैसे प्राप्त करें — और अपने आप को खाली करना इतना कठिन क्यों लगता है? (P17-0129)

जितना आपको लग रहा है कि मैंने प्राप्त किया है, वो छोड़ दो — खाली हो जाओ। आत्मज्ञान प्राप्त नहीं करना है, वो तो पहले से मौजूद है; आपको अपने आप को खाली करना है। खाली करने में बड़ी पीड़ा होती है, क्योंकि आपने बड़ी मेहनत से, चालाकी से, छीनकर, दूसरों का नीचे करके अपना बढ़ाकर उसे भरा है। जो कुछ है वो सिर्फ इस शरीर तक उपयोग करने के लिए था, पर हम उपयोगकर्ता नहीं रह पाए — मालिकपन आ गया, और उसके द्वारा हमने अपने आप को खड़ा कर लिया (पद, पढ़ाई, गाड़ी-बंगला)। इसलिए छोड़ोगे तो लगता है गिर जाओगे, मजाक बनेगा। आत्मज्ञान का मतलब है आपका अपने आप में हो जाना — जिस क्षण पूरी तरह खाली हो गए, उसी क्षण आत्मज्ञान है। समझदारी से देखो तो दुनिया में सबसे आसान आत्मज्ञान ही है — जब आप तुलना से, बड़े-छोटे से मुक्त हो जाएंगे। एक रुपया कमाना जटिल है क्योंकि वो किसी और पर निर्भर है, पर आत्मज्ञान में किसी के द्वारा की जरूरत नहीं। हमें डरा दिया गया कि ये अवतरित लोगों को होता है, जन्मों लगते हैं; हर काम का उपाय बताने वाले हैं, आत्मज्ञान का उपाय किसी के पास नहीं, क्योंकि वो उपाय आपके पास है। तुम जिसके पीछे भाग रहे हो, वही तुम हो — बस भागना बंद करो, रुक जाओ और अपने आप को खाली कर दो।

प्रश्न: गुरु जी, साधना करते दो-चार महीने, एक साल बीत गया, कुछ हो नहीं रहा — ऐसा क्यों? (P17-0130)

प्राप्त करने का यह भी एक नशा हो गया है। कुछ नहीं हो रहा — इसका मतलब आप अपने आप में आ रहे हैं। बात समझ में आ रही है, और जैसे-जैसे समझ में आ रही है वैसे-वैसे मानसिक रूप से छूट रहा है — आपकी समझ बढ़ना मतलब छूटना। कुछ भी प्राप्त नहीं करना है; अगर कुछ प्राप्त हुआ, चाहे वो दर्शन ही हो, तो फंस जाओगे — वो आत्म का बोध नहीं है। जैसे कपड़े का कोई दाग एक बार धोने से छूटता है और कोई कई बार धोने से, वैसे धीरे-धीरे समझ विकसित होने के साथ आप छूट रहे हो। बस धैर्य रखो, सत्संग सुनो, इंतजार करो और जितना प्राप्त है उसे छोड़ने का पूरा भाव बना लो — मैं पूरी तरह छोड़ने को तैयार हूं। जब आपकी तैयारी पूरी है तो कोई न कोई छुड़ाने वाला मिल ही जाएगा।

प्रश्न: गुरु जी, "मुझे तो कुछ नहीं चाहिए" — क्या यह कह देना ही काफी है?

(P17-0131)

(पहले समझ लो कि कहानी न सच होती है न झूठ, सिर्फ समझने के लिए होती है।) एक शिष्य गुरु से जिद करता रहा कि शक्तिपात कर दो, मुझे मुक्त कर दो, मुझे कुछ नहीं चाहिए। गुरु ने कहा अभी और साधना कर, तेरी स्थिति छोड़ने लायक नहीं बनी — तुझसे ज्यादा बेचैन तो मैं हूं। जिद पर गुरु ने हाथ रखा तो भीतर सब खत्म होने लगा, और वह चिल्लाया — छोड़ दो, मैं खत्म हो जाऊंगा — और छुड़ाकर भाग गया। "कुछ नहीं चाहिए" कह देना बड़ा आसान है और कहने में एक अलग ही मजा भी है; पर असली स्थिति तब पता चलती है जब मन का न हो, जब विपरीत परिस्थितियां आएं और व्यवस्था इधर-उधर हो।

प्रश्न: गुरु जी, जो कुछ प्राप्त है उसे छोड़ना है — तो छोड़ते समय दुख हो तो? और जिसके पास पहले से अभाव है, उसका क्या? **(P17-0132)**

जितना प्राप्त है उसे छोड़ना ही आत्मा है — हर चीज से आसक्ति छोड़नी है। अगर छोड़ते समय दुख हो रहा है तो वो छूटा ही नहीं। जिसके पास अभाव है, वह छोड़ा हुआ नहीं है — वह तो अभाव को पूरा करने में लगेगा। जो संपन्न है, उसे देखना चाहिए कि इन चीजों ने मुझे कहां पहुंचा दिया। गाड़ी का उपयोग करते रहो, पर गाड़ी में जो टशन लोगों को दिखाने के लिए था, उस भाव को छोड़ना है — उसके द्वारा अपने आप को खड़ा करना छोड़ना है। विपरीत परिस्थितियों में जैसी व्यवस्था हो उसका उपयोग कर लेना, वहां यह सिद्ध नहीं करना कि मैं बड़ा हूं, "मैं तो ऐसे नहीं रह सकता"। जो हैबिट, जो कंफर्ट जोन, जिन सुविधाओं के हम आदी हो गए, उस भाव को ही छोड़ देना है — विपरीत परिस्थिति में ही आपकी स्थिति का पता चलता है।

प्रश्न: गुरु जी, क्या यह भाव घर पर या उसी दुनिया में रहते हुए नहीं छोड़ा जा सकता? (P17-0133)

वहां नहीं छूटेगा — वहां तो हवा ही कंपटीशन की है, भाव बन ही नहीं पाएगा, और बना भी लिया तो लोग या घर वाले ही पागल बोलेंगे। इसीलिए मैं कहता हूं एक महीने के लिए एकांत में जाओ, किसी जीवंत गुरु के सानिध्य में रहो या भ्रमण में जाओ — तभी होगा। भाव बनाने से कुछ नहीं होता: भोजन है और आप कल्पना करो कि भोजन नहीं है, रजाई है और सोचो कि नहीं है — यह नाटक है, उसमें कोई पीड़ा नहीं होती। जब प्राकृतिक रूप से वह स्थिति सामने घटेगी, तब पता चलेगा कि तुम क्या प्रतिक्रिया देते हो। जैसे शादी में आंगन में महिलाएं गालियां गाती हैं तो आनंद के माहौल में बुरा नहीं लगता, पर वही बात सड़क पर कोई कह दे तो बर्दाश्त नहीं होगा — इसलिए नाटक नहीं चलता, प्राकृतिक घटना घटनी चाहिए। इसीलिए जीवंत गुरु की शरण और भ्रमण जरूरी है।

प्रश्न: गुरु जी, यहां (कुटिया में) आकर यह तो पता चल रहा है कि नया नहीं भर रहा, पर जो पहले से भरा है वह खाली हो रहा है या नहीं — यह कैसे पता चलेगा? (P17-0134)

इस दुनिया में कुछ भी एक जैसा नहीं रहता, हर पल बदलता है — या ऊपर जाता है या नीचे आता है। तो या तो आप लिप्त हो रहे हो, या छूट रहे हो; दो में से एक होता ही रहता है। आपकी समझ भी हर पल बदल रही है। आपको खुद देखना है कि कहीं यहां भी वही पुरानी दुनिया की हैबिट तो नहीं चला रहे — कहीं यहां लोगों से परिचय बनाकर, एक नए परिचय में जीकर, अलग ढंग से अपने आप को फिर से तो नहीं भर रहे। जीवित गुरु होगा तो वह भरने ही नहीं देगा, वह आपका व्यवहार ही नहीं बनने देगा।

प्रश्न: गुरु जी, आप कहते हैं कि यह नहीं बताया जा सकता कि किसको कितने दिन में आत्मज्ञान होगा — ऐसा क्यों? (P17-0135)

क्योंकि यह भवसागर है — इसका कोई अंत नहीं। किसने कितना इकट्ठा किया, कितनी सफाई कर रहा है, कितना छोड़ पा रहा है — कोई यहां तक गया है, कोई वहां तक। किसकी चाल कैसी है, कितनी दूरी तय कर चुका है, और उसकी तत्परता कितनी है — हो सकता है जीवंत गुरु भी हो, माहौल भी छोड़ दिया हो, पर अपना ही दृढ़ निश्चय न हो। अगर इसकी कोई तय गहराई होती तो बता दिया जाता कि इतने में हो जाओगे; पर तुम कितना गए हो, यह तुम ही बता सकते हो।

प्रश्न: गुरु जी, अगर हम उस भवसागर में गोते लगा रहे हैं, तो अपनी स्थिति कैसे जांचें? (P17-0136)

बस एकांत में रहो तो पता चल जाएगा — कि तुम व्यवस्थाओं के लिए कितने बेचैन हो, लोगों के लिए कितने बेचैन हो, कितनी अकड़ है, कितनी पीड़ा है, कितनी याद आ रही है। और देखो कि कहीं पछतावा तो नहीं हो रहा कि वो छोड़ दिया और यहां भी कुछ नहीं हो रहा — पीछे खूब मेहनत की थी, कहीं वह भी न चला जाए। यहां कुछ होगा ही नहीं, यहां तो सब खत्म होगा। और वह (संसार का) भी शरीर की आयु तक ही है, शरीर की आयु धीरे-धीरे ढल ही रही है।

प्रश्न: गुरु जी, हमें लगता है कि घर-परिवार वाले हमारे बिना नहीं रह पाएंगे — क्या यह सही है? (P17-0137)

यह गलत बात है कि "हम तुम्हारे बिना नहीं रह पाएंगे" — तुम्हारी भरपाई हो जाएगी। जैसे-जैसे लोगों को नए ऑप्शन मिलते हैं, वे उनके होते जाते हैं; तुमसे ज्यादा देने वाला कोई मिल ही जाता है, प्रकृति दे ही देती है, क्योंकि मूल तक पहुंचने तक हर व्यक्ति को "ज्यादा" का ऑप्शन चाहिए। वे आपको इसलिए याद करते हैं कि अभी आपका ऑप्शन नहीं है। जिस घर से आप प्यार करते हो, उसमें पूजा-पाठ किया — पर लगाए से दुगना मिले तो खुशी से बेच देते हो। तुम निकलोगे तो लोग यह भी कहेंगे अच्छा हुआ चला गया। तुम नहीं थे तब भी दुनिया चल रही थी, आगे नहीं रहोगे तब भी चलेगी — तुम क्या सीखकर निकलते हो, यह देखो। यहां एक से बढ़कर एक हैं; अगर एक से बढ़कर एक देखना चाहोगे तो ऐसे ही जन्मों घूमते रहोगे।

प्रश्न: गुरु जी, लीला और लीलाधारी का क्या अर्थ है — लीलाधारी से कैसे मिलें? (P17-0138)

आपको देखना है कि आपको जादू देखना है या जादूगर को पकड़ना है, लीला देखनी है या लीलाधारी से मिलना है। लीलाधारी को पकड़ना है तो लीला से मुक्त होना पड़ेगा। जब तक लीला में हो, चमत्कार पर चमत्कार — नए लोग मिलना, कोई धोखा करना, कभी अच्छी नींद, कभी रात भर नींद न आना — ये सब चमत्कार ही हैं; कुछ प्राप्त होना ही चमत्कार है। जिसके द्वारा चमत्कार हो रहा है उससे मिलना है तो चमत्कार से मुक्त होना पड़ेगा। आप भी लीला कर रहे हो — सबकी अपनी-अपनी बसाई दुनिया है; एक ही घर में बाप की, मां की, बेटे की दुनिया अलग है, कोई किसी की दुनिया में पूरी तरह नहीं जा सकता। सब मकड़ी के जाल की तरह नई-नई लीला रच रहे हैं। "सब खेल खेले राम गोसाई" — और अपनी लीला के लीलाधारी आप ही हो; लीला करने से मुक्त होगे तो लीलाधारी से मिलना होगा।

प्रश्न: गुरु जी, कभी लगता है कि यह सत्संग सुनना, यहां बैठना भी कहीं मेरी ही बनाई एक नई दुनिया, एक नई लीला तो नहीं? (P17-0139)

हां, यह भी आपकी बनाई हुई एक दुनिया है। उस दुनिया में आप लीला करने में आगे बढ़ रहे थे, नई-नई खोज कर रहे थे; अब इस दुनिया में आप लीला से मुक्त होना चाहते हैं — यह भी एक नई लीला है। इस लीला में बैठकर स्थिर होकर आप पुरानी लीलाओं को देख रहे हो, तार-तार कर रहे हो, उनका निचोड़ देख रहे हो कि कागज के गुड्डे-गुड़िया जैसे थे। सब अपनी-अपनी दुनिया के लीलाधारी हैं।

प्रश्न: गुरु जी, कई बार लगता है कि यह माहौल, यह घटना पहले भी बहुत बार मेरे साथ घट चुकी है — ऐसा क्यों? (P17-0140)

जितनी बार मानव शरीर में जन्म हुआ होगा, उतनी बार पढ़ाई की होगी, उतनी भाषाएं सीखी होंगी — जो भाषा आप बोल रही हो वो पहली और आखिरी तो होगी नहीं। वैसे ही जितने जन्मों से हम घूम रहे हैं, ऐसा नहीं कि पहली बार यहां बैठे हैं — पता नहीं कितनी बार बैठे होंगे, और अगर अपने आप को नहीं छुड़ा पाए तो पता नहीं कितनी बार और बैठेंगे। जब तक निकल नहीं जाते, यहां दो ही काम हैं — एक फंसने वाला, एक निकलने वाला। आप ऐसे ही घूम रहे हो, कभी फंसने वाली जगह, कभी निकलने वाली जगह।

प्रश्न: गुरु जी, हमारा दृढ़ निश्चय नहीं हो पाता, इसलिए उसी दुनिया में बार-बार नई लीला रच देते हैं — क्या करें? (P17-0141)

जब तक कुछ प्राप्त करना है, तब तक नई लीला रचोगे। इसीलिए मैं यहां किसी को लीला रचने नहीं देता — छूट दे दूं (बातचीत, मोबाइल, अपने तरीके से जीना) तो भीड़ हो जाएगी। जगह बदलने से आदमी नहीं बदलता, जितना सीखा है वही करेगा। इसलिए यहां का मालिक कोई व्यक्ति विशेष नहीं, यहां का मालिक नियम है — और यह नियम तुम्हें आगे की लीला रचने नहीं देगा। तुम तो कुछ करोगे ही (शरीर रोको तो मन से करोगे), तो जब नई लीला नहीं रच पाओगे तो अपनी पुरानी लीला खुद खत्म करोगे — जैसे पौधे में पानी न डालो तो अपने आप सूख जाता है। इसीलिए कहता हूं कि यहां के नियम में रहने वाले की उपलब्धि पक्की है। "पड़े रहो" का मतलब है कोई नई रचना मत करो, किसी नई एक्टिविटी में इन्वॉल्व मत हो। पेड़ में पानी डाल रहे हो, पर याद रखना यह तुम्हारा पेड़ नहीं है — जैसे ही तुम रचना करना चाहोगे, तुम्हें हटा दिया जाएगा। जैसे ही लीला करना बंद हुआ और कर्ता का भाव खत्म हुआ, पिछला खत्म होगा और एक समय लीलाधारी से मिलना हो जाएगा — वह लीलाधारी तुम ही हो।

प्रश्न: गुरु जी, यहां बातचीत की मनाही क्यों है, और "मेरा" कहने में क्या गड़बड़ है? (P17-0142)

बातचीत में ही तो लीला है। "मेरा पेड़" — जब तक किसी को बताओगे नहीं, तब तक वो तुम्हारा बन नहीं पाएगा; "मेरा" कहने से अहम भाव खड़ा होता है, और मेरा बताने के लिए कोई दूसरा चाहिए। अगर आपको राजा बना दिया जाए पर कहा जाए कि यह गुप्त रहेगा, किसी को पता नहीं चलेगा — छप्पन भोग, सारी व्यवस्था, बस पद न बताया जाए — तो आप बौखला जाओगे। यह रहस्य है कि तुम अपने लिए कुछ बनते ही नहीं, सारा नाटक लोगों के लिए है — पेड़ के द्वारा तुम अपने आप को खड़ा करना, किसी को दबाना चाहते हो। अपने लिए तो बस उतना खाना है जितने में जी सकते हो; अकेले बनाकर खाना हो तो छप्पन भोग से शुरू करके साग-रोटी, फिर बासी पर आ जाओगे। व्यवस्थाएं भीड़ के लिए चाहिए, अहम भाव को पोषण देने के लिए।

प्रश्न: गुरु जी, मैं जो भी बनी, दूसरों के लिए बनी, चीजों में अपनापन डालकर खुद को साबित करना चाहती रही — क्या मेरे अंदर कोई कमी है, या मुझे सही मार्गदर्शन नहीं मिला? (P17-0143)

आपको जीवन में सत्संग नहीं मिला, आपके बारे में आपको बताया नहीं गया। हमेशा यही बताया गया कि यह बनो, बनने में तुम हो। बाद में कोई गुरु बताता है कि बनने से मुक्त होने में तुम हो — बनने में तुम कहां, तुम तो न बनने में हो। सोने की चेन पहनोगे तो कॉलर खोल दोगे; पर कहा जाए एक किलो सोना पेट में रख लो जो किसी को न दिखे, तो बर्दाश्त नहीं कर पाओगे — दिखना चाहिए। उसके द्वारा अपने आप को खड़ा करना चाहते हो। तुम कुछ नहीं हो; तुम कुछ होना चाहते हो — यही बंधन है, और "कुछ नहीं" में ही तुम हो। अपने लिए तुम्हें नाम, पढ़ाई, वकालत, प्रोफेसरी की क्या जरूरत है? यह सब लोगों के लिए बनते हैं, लोगों को निमित्त बनाकर अपने अहम भाव को पोषित करते हैं।

प्रश्न: गुरु जी, मैं बड़ा बनना चाहता हूं, अपना पसारा करना चाहता हूं — क्या यह इस बात का संकेत है कि मैं अपने मूल से, उस बड़े से बिछड़ गया हूं? (P17-0144)

मैं तो उसी बड़े का अंश हूं ही, पर क्षणिक "मैं" उससे बड़ा बनना चाहता है — यही गड़बड़ है। जिसके द्वारा मैं बड़ा बनना चाहता हूं, वह भी तो उसी से है, वह भी बड़ा है। जैसे — मैं हूं और आप हो, यही दुनिया है। मुझे बड़ा बनना है तो आपको नीचा करना पड़ेगा, कोई छोटा होगा तभी मैं बड़ा हो पाऊंगा। पर जब मैं आपको छोटा कर रहा हूं, और आप भी उसी से हो, तो मैं खुद छोटा हो जा रहा हूं — यही मेरा झूठ, यही मेरा गिरना, यही उससे मेरी दूरी है। मैं था तो था — मैंने तुलना क्यों की? तुलना में व्यक्ति फंस गया। तुलना इसलिए करते हो कि अपने आप को बड़ा सिद्ध करना चाहते हो।

प्रश्न: गुरु जी, मूल से मेरा हटना कैसे हुआ — हम परमात्मा से अलग होकर इस दुनिया में कैसे आए? (P17-0145)

(समझने के लिए एक कल्पना है।) जब हम उसके पास थे, तब उसकी दुनिया देखकर लगा कि यहां तो सब दुखी हैं, त्राहिमाम है — कैसी दुनिया बना दी तुमने! मैं जाकर सही करके आता हूं, अपने तरीके से। उसने कहा ठीक है, तू कर्ता का अधिकार ले ले; पर इस दुनिया में आने के लिए तुझे शरीर लेना होगा, और जैसे ही शरीर लेगा, तू मुझसे दूर हो जाएगा, मालिक हो जाएगा। उस कॉन्ट्रैक्ट में यही हुआ कि "मैं ही करूंगा, तू बस साइड हो जा, मैं चिल्लाऊं तो भी मत आना"। अगर उसके सहारे करने जाते, जैसे कोई घर वाले से कहकर जाए कि मेरा ध्यान रखना, तो मालिकपन का भाव नहीं आता। तब से दुनिया बसा रहे हो, और बसाते-बसाते ऐसी स्थिति आ गई कि अब उसी से भागना चाहते हो — पर तुम्हारी दुनिया वाले पकड़ रहे हैं: मेरा हिसाब करो, तुमने वादे किए, तुमने मेरा उपयोग किया। बैटिंग खेल ली, अब बॉलिंग का नंबर आया तो भाग रहे हो। तब उसके जैसा एक गुरु होता है, जिसकी अपनी कोई दुनिया नहीं, कोई अपने लोग नहीं — वह बीच में मीडिएटर है। जब तुम कहते हो कि अब मैं अपने मूल में जाना चाहता हूं, तब वह बताता है कि तेरी हालत कैसी हुई और तू मालिकपन का भाव छोड़कर उसमें सुधार कैसे कर सकता है।

प्रश्न: गुरु जी, जब मैं उसी का अंश थी, उसी से थी, तो क्या मेरी वहां कोई अलग पहचान थी? और आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान के बाद क्या मैं वही हो जाती हूं?

(P17-0146)

उसके जैसे थे — वही नहीं। यहां सब अलग-अलग हैं, तभी तो भटक रहे हैं; अगर एक ही होते तो कौन भटकता, कहां भटकता? परमात्मा अलग ही है; गुरु को परमात्मा का स्वरूप कहा गया — स्वरूप यानी रूप हटा दो तो स्व — वह उसके जैसा है। शिष्य भी आत्मज्ञानी हो जाता है तो गुरु के जैसा बन जाता है। जैसे कोई अनेक बच्चों को जन्म देकर बाप बन सकता है, पर अपने बाप का बाप कभी नहीं बन सकता — उसके जैसा हो गया। इस पेड़ से जितने पेड़ होंगे, तत्व और गुणधर्म वही रहेंगे, सब इसके जैसे होंगे, पर यही नहीं हो सकते।

प्रश्न: गुरु जी, मुझे उसकी दुनिया ठीक करने की जरूरत ही क्यों पड़ी थी? और आज हम अपनी ही दुनिया से भाग क्यों नहीं पा रहे? **(P17-0147)**

आपने वहां से उसकी दुनिया देखी तो बड़ी दुखमय लगी — यहां आकर भी यही तो कर रहे हो, सबका दुख मिटाना चाहा; और जिसके दुख मिटाए, वही दुख का कारण बन बैठा। जितने लोग मिले, आपने अपने तरीके से उनका दुख दूर करना चाहा — मिला क्या? जिल्लत और अपमान, और उन्हें लगा कि हमने उन्हें यूज़ कर लिया। कहीं न कहीं वे सही भी हैं, क्योंकि दुनिया बसाने में आपने सबका उपयोग किया — मेरी दुनिया में ऐसे-ऐसे लोग होने चाहिए, जो मेरे विचारों के अकॉर्डिंग नहीं वे मेरी दुनिया में नहीं। इसीलिए अपनी दुनिया में अपने जैसी विचारधारा वाले ही मिलते हैं — चोर को चोर पसंद आता है, सत्संगी को सत्संगी। अब आप अपनी दुनिया से थक गए, रंक से राजा, राजा से रंक बनकर देख लिया, कोई मजा नहीं। यह पक्का है कि यहां आपके रहने-न-रहने से राई भर भी कुछ नहीं बदलता।

प्रश्न: गुरु जी, हम कहते हैं कि हमने समाज के लिए बहुत कुछ किया — तो यह समाज कौन है, कौन किसके लिए कर रहा है? (P17-0148)

वो भी कह रहा है मैंने समाज के लिए किया, मैं भी कह रही हूं — मिलकर ही समाज बनता है। पर कर कौन किसके लिए रहा है? यहां कोई किसी के लिए नहीं कर रहा, सब अपने लिए कर रहे हैं; मां-पिता भी मोह के वशीभूत होकर करते हैं। एक गुरु है जो बस आपके लिए करता है, क्योंकि वह करने से मुक्त हो गया, उसका किसी से मोह नहीं — इसीलिए उसे परमात्मा का सीधा स्वरूप कहा गया। "गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु... गुरु साक्षात परब्रह्म" — कोई शरीर गुरु पद पर आ गया, मालिकपन और दो के भाव से, बड़े-छोटे से मुक्त हो गया, तो उसे प्रणाम है। जब तक आप उस स्थिति में नहीं आते, आप भी अपने लिए ही करते रहोगे; इतनी ईमानदारी तो हो कि कह सकें "आज तक मैंने अपने ही मजे लिए और उसी मजे में फंस गया"। आत्मज्ञान होने पर कर्ता भाव से मुक्त हो जाओगे, बात खत्म।

प्रश्न: गुरु जी, नदी बहकर समुद्र में मिलती है तो उसका अस्तित्व मिट जाता है — क्या ऐसा ही होता है? (P17-0149)

यह आपको लग रहा है कि अस्तित्व मिट जाता है, क्योंकि उसके आगे देखने की आपकी क्षमता नहीं है। आप पानी जैसा ही देखते हो और सोचते हो कि दौड़ समुद्र तक थी, यहीं खत्म हो गई — हो सकता है उसके आगे भी कहीं यात्रा हो, जिसे हम नहीं देख पा रहे। जैसे गुरु को भी हम अपने जैसा ही देखते हैं कि वह भी खाता-पीता, चलता है। मिलने के बाद क्या होता है, वह मिलने वालों को मिलने के बाद ही पता चलता है।

प्रश्न: गुरु जी, आप कहते हैं दर्शन से कुछ मतलब नहीं — तो साधना में जो दर्शन और अनुभव होते हैं, वे कौन देता है? क्या वे हमारी कल्पना हैं, या रास्ते से भटकाने के लिए होते हैं? (P17-0150)

दर्शन बहुत हो जाएंगे, अनुभव होंगे, पर वह आत्मदर्शन नहीं है, आत्मज्ञान नहीं है। "सब खेल खेले राम गोसाईं" — सारे खेल के खिलाड़ी आप ही हो: लीलाधारी, जादूगर, चमत्कार करने वाले और चमत्कार महसूस करने वाले भी। हर पल आपको चमत्कार चाहिए, बदलाव चाहिए, क्योंकि अलग हो रहा होगा तभी आप मालिक हो। भटक तो आप तभी गए जब मालिक बनना चाहा, और जब तक मालिक बनना चाहोगे, भटकते रहोगे। बस ऐसा करो कि मालिकपन का भाव छूटे — काम को काम के तरीके से कर दो, अपने तरीके से नहीं; मालिक तभी तक हो जब तक अपने तरीके से चाहते हो। काम के तरीके से करोगे तो मालिकपन अपने आप छूट जाएगा।

प्रश्न: गुरु जी, हम हर परिणाम को पॉजिटिव या नेगेटिव मान लेते हैं — इसे कैसे समझें? (P17-0151)

पॉजिटिव-नेगेटिव आपने बनाया है। आपका पॉजिटिव कभी आपके लिए नेगेटिव था, और फिर नेगेटिव हो भी जाएगा — कोई चीज थोड़ी देर ही मजा देती है, फिर खाक हो जाती है। जैसे भोजन पकते ही सुगंध आती है तो आप खुश होते हो; रख दो, तीसरे दिन वही भोजन नेगेटिव हो गया। इसी में तो फंसे हो — न पॉजिटिव है न नेगेटिव, ये दोनों पैदावार तुम्हारी है। अपने तरीके से हुआ तो पॉजिटिव, नहीं हुआ तो नेगेटिव — यह तुमने ऊर्जा का रूपांतरण किया। ऊर्जा सिर्फ सात्विक है।

प्रश्न: गुरु जी, मालिकपन का भाव कैसे छूटेगा? (P17-0152)

मालिकपन का भाव आया अपने तरीके से और तुलना से। जिससे-जिससे मालिक बने हो, वह सब छूटेगा। जैसे पानी को फ्रिज में रखा तो बर्फ बन गया — बर्फ अपना भाव तब छोड़ेगी जब या तो फ्रिज से बाहर निकालो या कनेक्शन काट दो; दोनों में से एक नहीं करोगे तो बर्फ का भाव नहीं छूटेगा। फिर इंतजार करो, बर्फ धीरे-धीरे पानी हो जाएगी। वैसे ही जिसके द्वारा आप मालिक बन बैठे हो, उसे छोड़ना पड़ेगा — वही बेस-आधार है; वह नहीं छूटेगा तो मालिकपन का भाव भी नहीं छूटेगा। मालिकपन का भाव छूटा, तो तुम तुम हो जाओगे।

प्रश्न: गुरु जी, हमसे वैसी तत्परता और तीव्रता क्यों नहीं बनती? अगर अभी भी मौका मिले तो मन कुछ बदलना ही चाहता है। (P17-0153)

ऐसा ही है — अभी भी अगर ऐसी ताकत मिल जाए कि जो चाहो वो हो जाए, तो आप वहीं भागोगे: पिछला तरीका काम नहीं किया, नए तरीके से करके देखते हैं; झंडा मेरा लहराए, मूर्तियां मेरी बनें, आत्मज्ञान तो अंदर है, कभी भी कर लेंगे। आप अनेक उपाय करके, हार-थककर, अपमान और धोखा पाकर अब मजबूर होकर भाग रहे हो — इसलिए तीव्रता नहीं है, सारे चांस ले चुके हो। काम नहीं हो रहा तो उसे त्याग का नाम दे रहे हो — युद्ध की रणनीति फेल हो गई तो कहते हो अब शांति करो। जब यह पता चलेगा कि यह युद्ध कभी जीता ही नहीं जा सकता, क्योंकि यह भवसागर है, इसका आदि-अंत नहीं, अलग-अलग शरीर रूपी कपड़े बदलकर आज तक लड़ ही रहे हो और नए-नए योद्धा आते जा रहे हैं — तब असली बात समझ आएगी।

प्रश्न: गुरु जी, आगे जा नहीं सकते, थक चुके हैं, और पीछे लौटें तो किस आधार पर — यह भी पता नहीं; ऐसी स्थिति में क्या करें? (P17-0154)

जैसे सांप-छछूंदर की कहावत है — सांप ने छछूंदर को मुंह में ले लिया, निगले तो मर जाए, उगले तो अंधा हो जाए — तुम वहीं खड़े हो। तुम इस भवसागर में बीच में उतरे थे, किसी स्टेशन पर नहीं — न शुरुआत का पता, न अंत का; अब जहां उतरे थे वहां भी नहीं रहे, जैसे सौ साल पहले के पूर्वज लौटें तो अपना घर न ढूंढ पाएं। इसलिए परेशान और अशांत हो। अब बस इतना है कि न आगे जाना है न पीछे — स्थिर होना है, अपने मूल केंद्र में आना है; वह केंद्र कोई जगह नहीं, स्थिति है, और वह तुम खुद हो। इसीलिए यहां ऐसा नियम है कि तुम्हें कुछ प्राप्त नहीं होगा — प्राप्त करोगे तो आगे जाओगे; प्राप्त नहीं होगा तो पिछला खत्म होगा, और एक दिन अपने मूल केंद्र में आ जाओगे। अभी छुड़ाने की यात्रा है; केंद्र में आने के बाद मूल की यात्रा होगी।

प्रश्न: गुरु जी, आप कहते हैं इस शरीर को साधो — इसका क्या मतलब है? (P17-0155)

इसी शरीर के द्वारा आप उस केंद्र पर जा सकते हो, क्योंकि वह केंद्र इसी में है, और इसी के द्वारा भटके भी हो — शरीर को सब पता है। शरीर को साधने का मतलब है कि जिस सुविधा में रहे हैं अब उसका मजा न लें; जैसा सामने आ रहा है उसमें जितना शरीर के हित में है, जितने में जी सकते हैं, उतना ग्रहण करें; जो रोगी बनाए वह नहीं, और जहां ग्रहण में फंसने की स्थिति आए वहां नहीं। और ध्यान रखना कि जो व्यवस्था ले रहे हो, वह ईमानदारी की हो।

प्रश्न: गुरु जी, भ्रमण में भोजन और ठहरने के बारे में क्या ध्यान रखना चाहिए? (P17-0156)

भ्रमण में एक बार आप किसी से कैसा भी भोजन ग्रहण कर लो, दोष नहीं होगा; पर उसी व्यक्ति से दूसरी बार लेना हो तो देखना पड़ेगा कि वह कमाकर कहां से लाता है — इतना कौन बताएगा? इसलिए अध्यात्म में हो तो दूसरी जगह मांग लो। पहली बार वह अपरिचित को खिलाता है, दूसरी बार परिचित को, और तीसरी बार कोई उपाय पूछेगा — फिर आप उसके हो गए। इसीलिए भ्रमण में कहा गया है कि तीन दिन से ज्यादा कहीं मत रुकना — शरीर थका हो या स्वास्थ्य खराब हो तो तीसरे दिन रुक लो, पर चौथे दिन चाहे कुछ भी हो, वह जगह छोड़ दो; नहीं तो गांव में तेरा-मेरा, राग-द्वेष हो जाएगा। बड़ी सूझबूझ के साथ यात्रा करिए — फंसाने वाली समझ विकसित की थी, अब छुड़ाने वाली समझ विकसित करो।

प्रश्न: गुरु जी, आत्मचिंतन में एक ही घटना पर चित्त अटक जाता है और बार-बार वही चिंतन चलता रहता है — इससे आगे कैसे बढ़ें? (P17-0157)

देखो कि ऐसा क्यों हो रहा है — उसे ढूंढो कि उस घटना में राग-द्वेष क्यों हो रहा है, चित्त क्यों अटक रहा है। फिर उसकी भरपाई करनी पड़ेगी।

प्रश्न: गुरु जी, क्या जिस पल संसार छूट जाता है, तभी हम भगवत प्राप्ति के सुपात्र होते हैं? (P17-0158)

हां — जब राग-द्वेष, उम्मीद, "अपने तरीके से चाहिए", मान की इच्छा, बड़ा-छोटा बनने की इच्छा और दिखावा — ये सब छूट जाते हैं, तब आप उस लायक होते हैं।

प्रश्न: गुरु जी, प्रभु जिस पर कृपा करते हैं, क्या उसका मिथ्या संसार छीन लेते हैं? (P17-0159)

कृपा भी तब होती है जब आप कृपा के लायक मेहनत करते हो, उसके पात्र होते हो — जैसे प्रश्न करते हो तो उत्तर मिलता है; कृपा उत्तर है। उसकी कृपा तब होती है जब आप कहते हो कि मुझे छोड़ना है — जब आप चिल्लाने लगते हो कि मैं इस संसार से मुक्त होना चाहता हूं, मालिकपन का भाव छोड़ना चाहता हूं, थक चुका हूं, परेशान हो चुका हूं — तब वह किसी गुरु को भेज देता है, क्योंकि उसी से तुम हो। लेकिन चिल्लाना पड़ेगा।

प्रश्न: गुरु जी, यह तो समझ आता है कि इसमें मेरा कुछ नहीं, पर कर्ता का भाव कैसे छूटेगा? "मैं कर्ता नहीं हूं" — इसका बोध कैसे हो? (P17-0160)

अनुमान लगाना छोड़ दो। जब परिणाम अभी आया नहीं होता और तुम उसके बारे में अनुमान लगाते हो, तभी कर्ता का भाव प्रकट होता है। तो अनुमान लगाना छोड़ दो — परिणाम आने के बाद परिणाम बताओ।

प्रश्न: गुरु जी, क्रोध और ईर्ष्या पर संयम कैसे प्राप्त करें? (P17-0161)

तुलना छोड़ो। तुलना में ही क्रोध होता है, तुलना में ही ईर्ष्या और जलन होती है — कोई अच्छा, कोई बुरा, कोई ऊपर, कोई नीचे, कोई अमीर, कोई गरीब। तुलना छोड़ दो और जीवन को जियो।

प्रश्न: गुरु जी, सब सामान तो पैसे से मिलता है — तो खाली कैसे करें? (P17-0162)

खाली करने के लिए योग्यता से ज्यादा पाने की इच्छा का त्याग करो; मान की इच्छा, दिखावा, बड़ा-छोटा बनने की इच्छा और राग-द्वेष छोड़ दो।

प्रश्न: गुरु जी, "मैं ही तुम हूं और तुम ही मैं हो" — क्या हम सभी एक ही प्राण हैं? (P17-0163)

नहीं — न तुम हो, न मैं हूं। तुम हो तो मैं हूं; तुम नहीं तो फिर "मैं" बोलने की भी जरूरत नहीं। तुम्हारे द्वारा ही मैं हूं, तुम्हें छोड़ दिया तो फिर मैं भी खत्म।

प्रश्न: गुरु जी, आप कहते हैं कि साधना काल में पूजा-पाठ पर खर्च करते थे और अपने लिए दवाई तक नहीं ली, सभी तीर्थों पर गए — क्या इसी कारण आत्मज्ञान मिला? और क्या अब भी पूजा-पाठ करते हैं? (P17-0164)

मुझे प्रत्यक्ष मार्ग ढूंढना था — आत्मज्ञान से भी जरूरी मेरे लिए प्रत्यक्ष मार्ग था, और पता चला कि प्रत्यक्ष मार्ग तभी मिलता है जब आत्मज्ञान होगा। जितना मुझसे हो सकता था, मुझे समाज के लिए एक सीधा-सरल मार्ग और मूल ज्ञान लाना था। (अब पूजा-पाठ?) नहीं, अब जरूरत नहीं है।

प्रश्न: गुरु जी, प्रेम में स्वाभिमान होना चाहिए या नहीं? अगर प्रेमी अपमान करे और हम कठोरता से प्रतिक्रिया दें तो क्या वह अहंकार होगा? (P17-0165)

प्रेमी कभी अपमान कर ही नहीं सकता। अगर अपमान कर रहा है, तो वह प्रेमी है भी नहीं।

प्रश्न: गुरु जी, क्या आत्मज्ञान और वैराग्य न जंगल जाने से होता है, न चोला धारण करने से — सच्चा वैराग्य स्वयं भीतर ही उत्पन्न होता है? (P17-0166)

हां, पर ऐसा भी नहीं है। वैराग्य तो जिस स्थिति में व्यक्ति रह रहा है, उसी स्थिति में होगा। पर उससे मुक्त होने के लिए उसके लिए कौन सी जगह ठीक पड़ेगी, यह अलग बात है — हो सकता है कोई घर में मुक्त न हो पाए और उसके लिए जंगल जाए। जैसे कोई सामान घर पर मंगा लेता है और कोई बाजार जाकर लाता है — जिसने बाजार जाकर लाया, ऐसा नहीं कि घर पर सामान नहीं आता, पर उसकी वैसी कैपेसिटी नहीं थी। तो अपनी कैपेसिटी देखो और जहां ठीक हो वहां जाकर अपनी उपलब्धि करा लो।

प्रश्न: गुरु जी, आत्मज्ञान की दशा में आने में लगभग 12 साल लगते हैं — क्या इससे कम समय में भी किसी को हुआ है? (P17-0167)

मेरे समय से जहां तक मैंने समझा, कम से कम 12 साल में हो जाएगा — पर हो सकता है किसी को एक साल में भी हो जाए। बात यह है कि आप लग गए; अब तुम कितनी दूर गए हो, वो देखना।

प्रश्न: गुरु जी, आत्मज्ञान होने के बाद क्या व्यक्ति दोबारा उस बोध से वंचित हो सकता है, या फिर से इच्छाओं के कारण संसार के बंधन में फंस सकता है — जैसे पहली बार मूल से अलग हुआ था? और अगर फिर फंस सकते हैं तो ऐसी मुक्ति का क्या फायदा? (P17-0168)

वो उसके ऊपर है। पहली बार भी तो हम उसी (मूल स्थिति) में थे। जैसे कैदी बाहर निकलने की यात्रा करता है, और निकलकर इतना स्वतंत्र है कि चाहे तो फिर अपराध करके अंदर चला जाए। अगर ऐसी स्वतंत्रता न हो तो आप कहीं के गुलाम हो गए — आप इतने स्वतंत्र हो कि जो चाहे करो। और यही आजादी हम मूर्खों को मिल गई, जैसे गंजे को कंघी दे दो तो सिर खुजा-खुजाकर लहूलुहान कर ले। (जो पूछे कि फिर तो संसार ही भोगें —) भोगते रहो, आपके लिए वही सही है; नहीं तो अपना कल्याण करो, निकल लो।

प्रश्न: गुरु जी, क्या केवल पापी मन वाली बुद्धि को ही डर लगता है, और जिसके मन में राम और सत्य स्थित हैं उसे कोई भय नहीं लगता? (P17-0169)

भय तभी तक है जब तक "अपने तरीके से चाहिए"। अगर अपने तरीके का त्याग कर दो तो भय वहीं खत्म हो जाता है।

प्रश्न: गुरु जी, मोह, आसक्ति, राग-द्वेष, उम्मीद — ये आएं ही नहीं, इसके लिए क्या करें? (P17-0170)

बस दिखावा बंद कर दो, मान की इच्छा का त्याग कर दो।

प्रश्न: गुरु जी, क्या लोग असत्य में जीते हैं, इसीलिए सत्य वचन से भयग्रस्त होते हैं? (P17-0171)

हां, बेईमानी में जीते हैं, तो डरते हैं कि मेरा अस्तित्व मिट न जाए — इसलिए सत्य से भागते हैं।

प्रश्न: गुरु जी, सत्य वचन सुनकर अगर पीड़ा हो, तो क्या समझ लेना चाहिए कि हमारा मन ही पापी है? (P17-0172)

नहीं, मन नहीं — हमारे द्वारा पाप कर्म हुए हैं। मन न पापी है, न अच्छा है, न बुरा। हमारे द्वारा अपराध हुआ है, तो अब अपराध मत करो, पाप मत करो, सत्कर्म करो। मन को मत बोलो, मन सिर्फ निमित्त है — जैसे मोबाइल या कंप्यूटर में एरो (कर्सर); उसके द्वारा सब खोल सकते हो पर उसकी अपनी कोई जगह नहीं। मन शरीर के लिए काम करता है। आप जो चाहते हो वही करते हो — अब देख लो, आप क्या चाहते हो।

प्रश्न: गुरु जी, क्या सभी तरह की सुख-सुविधाओं और भोगों में रहते हुए भी विरक्त रहा जा सकता है? कैसे? (P17-0173)

हां, रहा जा सकता है — अगर ईमानदारी और सत्कर्म हो।

प्रश्न: गुरु जी, क्या अपने अधिकार मांगना भी लालच या अपराध है? (P17-0174)

नहीं, एकदम नहीं। अपने अधिकार के लिए लड़ाई भी लड़नी पड़े तो लड़ लो — यही धर्म है।

प्रश्न: गुरु जी, दृष्टा बनें तो माया में रहकर भी माया-ग्रस्त नहीं होते — पर क्या यह तभी संभव है जब भीतर स्व में परिपूर्णता और संतुष्टि हो? माया क्या है? (P17-0175)

माया संसार थोड़ी है — इस संसार में तो लोग आनंद में रहें। आपकी दुनिया माया है, क्योंकि आपकी दुनिया आपने अपने तरीके से खड़ी की है, बेईमानी से खड़ी की है। आप अपनी दुनिया से ग्रसित हो, इस संसार से थोड़ी ग्रसित हो।

प्रश्न: गुरु जी, क्या राधा जी ब्रह्म स्वरूप हैं? (P17-0176)

मैं इस बारे में कुछ नहीं बोल सकता। मेरा इतना कहना है कि अगर वे ब्रह्म स्वरूप होतीं तो कृष्ण के लिए क्यों तड़पतीं — समझिए। जब उनकी जीव-लीला सब खत्म होगी, एंड पॉइंट पर, तब सब उसके जैसा हो जाता है — वो तो आप भी हो जाओगे। पर अभी कहा जाए कि आप ब्रह्म हो, तो ना ही बोला जाएगा — यात्रा जारी है।

प्रश्न: गुरु जी, दूसरों के ऐब, अवगुण, गुनाह देखना कैसे बंद करें? (P17-0177)

मालिकपन का भाव छोड़िए, बड़ा बनने की इच्छा छोड़िए, और उसी तरीके से जीवन जियो।

प्रश्न: गुरु जी, क्या इच्छा के कारण ही जड़ भरत को हिरण की योनि में आना पड़ा? (P17-0178)

हां, एकदम — इच्छा के कारण। जब वह हिरण उन्हें चाटती थी तो उन्हें उससे सुख मिलता था; उस सुख के लिए हिरण से वियोग होने पर उसकी याद आती रही, और फिर उन्हें हिरण का शरीर मिला।

प्रश्न: गुरु जी, परिवार में बच्चों का पालन-पोषण अच्छे मूल्यों और ईमानदारी के ढंग से कैसे करें? (P17-0179)

आपकी इनकम ईमानदारी से हो, उससे उन्हें व्यवस्था दें; उन्हें संस्कार सिखाएं और उन्हें अध्यात्म भी सिखाएं।

प्रश्न: गुरु जी, नियम और पूर्ण स्वतंत्रता एक साथ कैसे चल सकते हैं? क्या नियम भी साधक के लिए एक नई जंजीर नहीं है? (P17-0180)

नहीं, यहां ऐसा नियम बनाया गया है कि नियम ही मुक्ति का मार्ग है; जैसे-जैसे आप आगे बढ़ोगे, नियम भी छूटता जाएगा और आप मुक्त हो जाओगे। जो इस चाल से चल रहे हैं, उनका आत्मज्ञान पक्का है — बस चाल बनी रहे, कदम पीछे न जाए; आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, एक दिन होना ही होना है, क्योंकि वो तो आपकी मूल स्थिति है — इसमें संशय ही नहीं।

प्रश्न: गुरु जी, घर में किसी की मृत्यु होती है तो खुद को दोषी क्यों महसूस होता है? (P17-0181)

इसलिए कि आपने उसके साथ कुछ ऐसा व्यवहार किया होगा। हम जिसके साथ जी रहे हैं, उसके साथ ऐसा बर्ताव रखो कि किसी भी क्षण वियोग हो तो पछतावा न हो कि हमने ऐसा व्यवहार किया। बल्कि यह संतोष हो कि मिलना-बिछड़ना तो पक्का है, और हमारा व्यवहार इस व्यक्ति के साथ एकदम उचित रहा।

प्रश्न: गुरु जी, क्या जरूरत में जीने से भोगने की इच्छा समाप्त हो जाएगी — और नया नहीं बनेगा, पुराना छूट जाएगा? क्या ईमानदारी से कर्म करने पर कर्ज चुकता होता रहता है? (P17-0182)

हां, एकदम — ईमानदारी और सत्कर्म के साथ; सत्कर्म मत छोड़िए। अगर ईमानदारी से कर्म के साथ आप जरूरत में जी रहे हैं, तो एक समय ऐसा आएगा कि नया तो बनेगा ही नहीं और पुराना खत्म हो जाएगा — बचोगे तुम।

प्रश्न: गुरु जी, "कुछ नहीं चाहिए" में जो ऊर्जा संचय होती है और भोग में जो खर्च होती थी — उस ऊर्जा का सदुपयोग कैसे करूं ताकि आत्मिक कल्याण हो? (P17-0183)

बस जरूरतमंद की सेवा करके।

प्रश्न: गुरु जी, आप कहते हो "निकल लो" — कहां निकलें और कैसे निकलें? (P17-0184)

पहले तो निकलने के लिए तैयार हो जाओ। जहां जा रहे हो, पहले वहां रुको — जहां जा रहे हो वहां रुक जाओ, तो निकल ही लोगे।

प्रश्न: गुरु जी, क्या आत्मज्ञानी अंतर्यामी होता है? (P17-0185)

हां, बोल सकते हैं। लेकिन वह अपनी ऊर्जा का उपयोग बस आत्मिक कल्याण के लिए लगाता है।

प्रश्न: गुरु जी, जब सुख और दुख दोनों नकली हैं, तो जीवन किसके सहारे जिएं — कोई ठोस आधार तो चाहिए? और कभी-कभी उस स्थिति में पहुंचते हैं, हमेशा के लिए स्थिर कैसे हों? (P17-0186)

आपका आधार आपकी उपलब्धि है — आनंद, जहां न सुख है न दुख। और स्थिति में पहुंचने के बाद आप लेने-देने के लिए फिर बाहर जाते हो — तो लेने-देने का भाव छोड़ो।

प्रश्न: गुरु जी, "अपना तरीका छोड़ दें" — क्या कुछ पाने की इच्छा ही अपना तरीका है? (P17-0187)

अपने तरीके से और अपनी योग्यता से ज्यादा पाना — यह इच्छा है। तो योग्यता से ज्यादा पाने की इच्छा का त्याग करें।

प्रश्न: गुरु जी, रास्ते में कोई जीव मृत पड़ा मिलता है तो मैं उसे रास्ते से हटा देता हूं (या दबा देता हूं) — क्या यह सत्कर्म है? (P17-0188)

यह समाज सेवा में आता है — किसी को दुर्गंध नहीं होगी, प्रदूषण नहीं होगा, रास्ता साफ रहेगा — पर इसे सत्कर्म नहीं बोल सकते, क्योंकि उस शरीर में जो था वह जा चुका, उस शरीर के अंदर से कोई आशीर्वाद नहीं दे रहा। जैसे आपका एक बाल गिर जाए तो उसे कोई कुछ भी करे, आपको फीलिंग नहीं होती। अगर कोई जीव तड़प रहा है और आपने उसे हटाया, उसका इलाज कराया — वह सत्कर्म है। सत्कर्म जीवात्मा के साथ होता है — जिसके लिए कर रहे हो, उसकी आत्मा से ही ऊर्जा, आशीर्वाद उठे, क्योंकि आत्मा ही परमात्मा से मिलकर ऊर्जा दे सकती है। देखने वाले हों तो उनके मन से आशीर्वाद मिल सकता है, पर कुल मिलाकर यह सेवा है, सत्कर्म नहीं।

प्रश्न: गुरु जी, मुझे झूठ बोलने और चोरी करने की आदत लग गई है — इससे कैसे निकलूं? (P17-0189)

बस मत करो — नहीं तो परिणाम भोगना पड़ेगा, और क्या।

प्रश्न: गुरु जी, जब आप कहते हैं कि पढ़ाई-करियर छोड़ दो, तो डर लगता है। (P17-0190)

मैं कहां कह रहा हूं कि पढ़ाई-करियर छोड़ दो? कभी नहीं बोला। मैं कह रहा हूं कि "अपने तरीके से चाहिए" — वो छोड़ दो। उचित तरीका अपनाओ, समाज हित के लिए काम करो।

प्रश्न: गुरु जी, कोई व्यक्ति अपने तरीके से कुछ पाना चाहता है — अपना तरीका न रहने पर क्या उसका प्रयास कम हो जाता है? (P17-0191)

हां, क्योंकि "मैं" खड़ा नहीं होगा। अपना तरीका खत्म हो गया तो वह उचित प्रयास करेगा और अनुचित प्रयास छोड़ देगा; अपने तरीके में वह अनुचित प्रयास करता है।

प्रश्न: गुरु जी, आत्मज्ञान के बाद इस धरा पर और कितने जन्म होंगे? (P17-0192)

आत्मज्ञान के बाद जन्म लेने की क्या जरूरत है? हां, अगर आपको लग रहा है कि मुझे किसी का कल्याण करना है — अगर आपने किसी से कह दिया कि हम आपका कल्याण करके ही छोड़ेंगे — तो जब तक उसका कल्याण नहीं होगा, उसके लिए आपको शरीर लेने आना पड़ेगा। वादा ही आपको लेकर आता है।

प्रश्न: गुरु जी, भाव शुद्धि कैसे होती है? (P17-0193)

भाव शुद्धि कर्म से होती है — जैसा कर्म करते हैं, वैसा भाव बनता है।

प्रश्न: गुरु जी, लोग ऐसे ही कोई भी वादा, कसम कर लेते हैं — "तेरे लिए चांद-तारे तोड़ लाऊंगा" — क्या बोलने वाला उसमें फंस जाता है? (P17-0194)

हां, कोई बात ऐसे ही नहीं जाती — आज नहीं तो कल, कभी न कभी वह करनी पड़ेगी, या करते-करते थक जाओगे। चांद-तारे तो टूटेंगे नहीं, पर उसकी भरपाई करनी पड़ेगी — वो नहीं टूटेंगे, तुम टूट जाओगे। इसलिए ऐसा फेक वादा मत करो जो हो ही नहीं सकता; सबसे ज्यादा बेईमानी बोलने में ही होती है। अगर किसी ने सामने वाले की भावनाओं से खेला, उसका उपयोग करने के लिए झूठा आश्वासन दिया और उसने भरोसा कर लिया, तो उसे भोगना पड़ेगा — जैसे जहर का इंजेक्शन किसी ऐसे को दे दिया जिसे जहर ने काटा ही नहीं, तो पकड़े आप ही जाओगे।

प्रश्न: गुरु जी, बचपन में मां-बाप और भाई-बहनों से जो वादे होते हैं — "हम कभी अलग नहीं होंगे", "मैं तुम्हारे बुढ़ापे का सहारा बनूंगा" — और फिर कोई अध्यात्म के रास्ते पर आ जाता है, तो क्या आत्मज्ञान के बाद भी उन वादों की भरपाई करनी पड़ेगी? (P17-0195)

हां, अगर उस वादे के सहारे उसने उनसे कुछ लिया — चापलूसी करके — तो भरपाई करनी पड़ेगी; अलग रूप सामने आएगा, पर भरपाई कहीं न कहीं करनी पड़ेगी। जैसे बच्चा मां को पटाकर, जिद करके सौ रुपये ले लेता है — वह भी भोगना पड़ेगा; एक-एक शब्द का हिसाब देना पड़ेगा। अधिकार है तो अधिकार से मांगो, चापलूसी करने की क्या जरूरत है? और मां को भी पता है कि अभी इसे कुछ चाहिए — घुमा-फिराकर वे भी कहीं भोग रहे हैं, तुम भी कहीं भोग रहे हो।

प्रश्न: गुरु जी, तो क्या मैं यह समझूं कि जो भी मेरे सामने आ रहा है — कोई इंसान, पशु-पक्षी, यहां तक कि चींटी भी काट ले — तो यह मेरा कभी किया हुआ वादा है जिसकी वह भरपाई ले रहा है, और उसे काटने दूं? (P17-0196)

नहीं, नहीं। प्राकृतिक हो रहा है — जितना काट लिया, उसे हटा दो, क्योंकि अपनी आत्मरक्षा भी तो करनी है। यह गलती मत करना कि क्या पता भरपाई पूरी न हुई हो तो काटने दूं; जब तक आपको पता नहीं चला या जब तक आप हटा नहीं पाए, उतने में उसने भरपाई कर ली। आत्मरक्षा के साथ समझो कि हर शब्द का हिसाब-किताब होगा।

प्रश्न: गुरु जी, अगर मैंने ठान लिया कि मुझे यहां से निकलना है, तो पुराने लेन-देन, पुराने लेनदार कैसे सामने आते हैं और उनकी भरपाई कैसे हो? (P17-0197)

जैसे आपको कोई एरिया छोड़ना है और आपने अनाउंस कर दिया, तो जितने लेनदार हैं सब आ जाएंगे — मेरा देकर जाओ। कोई प्रॉपर्टी ले लेगा, कोई सामान, कोई कुर्सी; कम पड़े तो कहोगे जहां जा रहे हैं वहां से भेज देंगे। वैसे ही आपने प्रकृति में चिल्ला दिया कि अब हम निकलना चाहते हैं, तो सारे लेन-देन वाले याद आ रहे हैं, बार-बार चिंतन में आ रहे हैं, सूक्ष्म रूप से दिखने लगा है कि किसका कैसे उपयोग किया। अब सत्कर्म करोगे, प्रकृति के काम में सहयोग करोगे, तो भरपाई होगी — अलग-अलग रूप में लोग आएंगे और अपना लेकर चले जाएंगे। सत्कर्म में आप एहसानमंद नहीं बनते, कोई उम्मीद नहीं रखते — वहां सिर्फ देना है, लेना नहीं; प्रकृति अपना हिसाब अपने तरीके से ले लेती है। जितना सत्कर्म आपके द्वारा हो, समझ लो कि बड़ी तेजी से यात्रा हो रही है। पर जरा सा इधर-उधर हुए तो सत्कर्म ही छीन लिया जाएगा, क्योंकि पीछे लंबी लाइन लगी है — तुमने मौका मांगा था इसलिए दिया गया। इसलिए कहता हूं, उपयोग हो जाओ; जिस दिन पूरी भरपाई हो जाएगी, बात खत्म हो जाएगी।

प्रश्न: गुरु जी, अगर हम यहां से छूटने के लिए सत्कर्म कर रहे हैं, तो उसे निष्काम कर्म कैसे कहें? (P17-0198)

निष्काम ऐसे कि छूटने के लिए कर रहे हो, पकड़ने के लिए नहीं — पकड़ने में कर्ता का भाव है, छोड़ने में नहीं। देखना यह है कि किस स्थिति-परिस्थिति में कर्म कर रहे हो: एक व्यक्ति अपनी जरूरत के लिए किसी को थप्पड़ मारता है, और एक व्यक्ति किसी कमजोर को सताने वाले को रोकने के लिए, या आग में कूदते बालक को बचाने के लिए थप्पड़ मारता है — वह थप्पड़ मारकर भी नहीं मार रहा।

प्रश्न: गुरु जी, क्या आपको अंतरात्मा से गुरु मान सकते हैं? अगर आप शिष्य नहीं मानते, तो क्या आपको सुनते-सुनते आत्मकल्याण हो जाएगा? (P17-0199)

हां — जितना मैं बता रहा हूं उसमें जियो। शिष्य कौन? जिसे आत्मिक कल्याण करना है। गुरु कौन? ज्ञान का प्रतीक। यहां मानने की बात ही नहीं, यहां समझने की बात है — यह बॉडी की आइडेंटिटी की बात नहीं कि कोई रजिस्टर में चढ़ाएगा कि आप उसके शिष्य हो गए।

प्रश्न: गुरु जी, लगभग 350 साल बाद हमें अपनी कुलदेवी का पता चला, पूजा-पाठ करते हैं और घर की हालत अच्छी हो रही है — क्या इससे आत्मज्ञान में सहयोग होगा? कुलदेवी तो कुल की रक्षा करती है। (P17-0200)

आत्मज्ञान में सहयोगी तब होगा जब आप आत्मिक कल्याण के लिए कुछ कर रहे हो। क्या उनकी पूजा-पाठ, वंदना, प्रार्थना आत्मिक कल्याण के लिए कर रहे हो? और क्या वह करने से आत्मिक कल्याण होगा — यह बात आपको पता है? यह देख लीजिए।